मास्टर ऑफ सोशल वर्क
(M.S.W.)
प्रथम वर्ष

सामाजिक अनुसंधान एवं सामाजिक सांख्यिकी
Social Research & Social Statistics
(तृतीय प्रश्न पत्र)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट (सतना) म.प्र. - ४८५३३४

सामाजिक अनुसंधान एवं सामाजिक सांख्यिकी
(Social Research & Social Statistics)

ई–संस्करण 2023–24 / M.S.W. –I - 03

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :
प्रो. भरत मिश्र
कुलपति
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

पाठ्यक्रम निर्माण

डॉ. संजय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणासी

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. अजय आर. चौरे,

पाठ्यक्रम अभिकल्पना एवं सम्पादक मण्डल :

डॉ. कमलेश थापक डॉ. विनोद शंकर सिंह

डॉ. नीलम चौरे डॉ. राजेश त्रिपाठी

मुद्रण प्रस्तुति

डॉ. सन्तोष अरसिया, उपकुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

सन्तोष राजपूत, सहायक कुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

शिवांगी त्रिपाठी

सम्पर्क सूत्र :
डॉ. कमलेश थापक, निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा
दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

दूरभाष– 07670–265460, E-mail – directordistancemgcgv@gmail.com, website : www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :
दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

प्राक्कथन...

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की तपोस्थली, मंदाकिनी नदी के सुरम्य तट पर स्थापित महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय भारतरत्न नानाजी देशमुख के शैक्षिक चिंतन और संकल्पों की जीवंत अभिव्यक्ति है, जो म.प्र.शासन द्वारा 12 फरवरी, 1991 को विशेष अधिनियम 09, 1991 द्वारा स्थापित हुआ।

विश्वविद्यालय का ध्येय वाक्य है–'विश्वं ग्रामे प्रतिष्ठितम्' अर्थात ग्राम विश्व का लघु रूप है। विश्वविद्यालय चित्रकूट में स्थित है, जो एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। नई पीढ़ी के लिये यह स्थान आदर्श एवं प्रेरणा का केन्द्र है।

विश्वविद्यालय में कृषि, प्रबंधन, अभियांत्रिकी, लोक विज्ञान, ग्रामीण विकास एवं स्थानीय स्वशासन, लोक शिक्षा, कला, संस्कृति एवं साहित्य सहित सभी अकादमिक धारायें प्रभावी रूप में उपस्थित हैं। विश्वविद्यालय, ग्राम को समाज जीवन की मूल इकाई मानकर शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध और प्रसार कार्यों से सर्वांगीण विकास के लिए विगत 3 दशकों से अधिक समय से समर्पित प्रयास कर ग्रामोदय से राष्ट्रोदय के संकल्प में लगा हुआ है। विश्वविद्यालय ने अपनी गतिविधियों और कार्यक्रमों के माध्यम से कौशल विकास के उन्नयन एवं प्रमाणन तथा सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है तथा शासन के सहयोगी के रूप में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

प्राचीन एवं सनातन भारतीय ज्ञान की परम्परा के आलोक में आई, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 चिरवांछित जन आकांक्षाओं की सम्यक् अभिव्यक्ति है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के युगान्तरकारी प्रावधानों को लागू करने में मध्यप्रदेश अग्रणी राज्य रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने नवाचारों के लिए सकारात्मक और अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराया है। विद्यार्थियों की पठन–पाठन की स्वतंत्रता, कौशल विकास के समुचित अवसर तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार आने वाले भविष्य के लिए तैयार करने की प्रतिबद्धता राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों में स्पष्टतः दिखाई देती है।

विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों को दूरवर्ती के विभिन्न पाठ्यक्रमों में अर्थपूर्ण रूप से जोड़कर इन्हें सत्र 2023–24 से पुनः संशोधित/परिवर्धित रूप में प्रारम्भ किया है। विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के प्रसार एवं रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु दूरवर्ती माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष प्रयास कर रहा है। दूरवर्ती पद्धति से संचालित विभिन्न पाठ्यक्रमों में नियमित संपर्क कक्षाओं के आयोजन, उच्च शिक्षा की स्व–अध्ययन सामग्री एवं नई शैक्षिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए शिक्षार्थी को बेहतर शैक्षणिक अनुभव प्रदान करने की व्यवस्था सुनिश्चत की जा रही है।

विश्वविद्यालय के दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र द्वारा सत्र 2024–25 में संचालित परास्नातक, स्नातक तथा डिप्लोमा स्तरीय दूरवर्ती पाठ्यक्रमों के शिक्षार्थियों हेतु ई–स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री प्रस्तुत करते हुये मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है।
पाठ्यक्रम से जुडे सभी शिक्षार्थियों, अभिभावकों, प्रशासकों, समन्वयकों और अन्य सभी को मेरी मंगलकामनायें

प्रो. भरत मिश्रा
कुलपति

सामाजिक अनुसंधान एवं सामाजिक सांख्यिकी

अध्याय – 1 : सामाजिक अनुसंधान

अध्याय – 2 : अनुसंधान के विभिन्न प्रकारों की विवेचना

अध्याय – 3 : प्राक्कल्पना के प्रकार

अध्याय – 4 : शोध–प्रारूप

अध्याय – 5 : शोध के प्रकार

अध्याय – 6 : तथ्य संकलन की विभिन्न विधियाँ

अध्याय – 7 : सामाजिक अनुसंधान में साक्षात्कार पद्धति तथा वैयक्तिक सेवा कार्य में साक्षात्कार

अध्याय – 8 : सामाजिक अनुसंधान में वैयक्तिक अध्ययन पद्धति तथा वैयक्तिक सेवा कार्य

अध्याय – 9 : निदर्शन पद्धति

अध्याय – 10 : स्तरित निदर्शन

अध्याय – 11 : स्तरित केन्द्रिय प्रवृत्ति के माप

सामाजिक अनुसंधान

मनुष्य स्वभाव से जिज्ञासु होता है। यह जिज्ञासा सामान्यतः मनुष्य के समक्ष एक प्रश्न के रूप में उपस्थित होता है। परन्तु इस जिज्ञासा की संतुष्टि हेतु सम्बंधित प्रश्न का उत्तर वैज्ञानिक विधि से ढूंढने का प्रयास किया जा रहा है तो इस उपक्रम को अनुसंधान की संज्ञा दी जाती है। प्रायः जिन प्रश्नों का उत्तर वैज्ञानिक विधि से ढूंढने का उपक्रम किया जाता है उनकी दो विशेषताएं होती है – प्रथमतः यह कि प्रश्न जिस तत्व से सम्बंधित है उस तत्व का एक निश्चित भौगोलिक सीमा में अस्तित्व हो और द्वितीय यह कि अवलोकन अथवा प्रयोग के माध्यम से उकत तत्व के संदर्भ में अपेक्षित तथ्य प्राप्त हो सके जिनके तर्क नियत विश्लेषण एवं विवेचना के आधार पर एक निष्कर्ष पर पहुंच सके जिसके माध्यम से प्रस्तुत प्रश्न का उत्तर दिया जा सके और जिज्ञासा की संतुष्टि हो सकें।

वस्तुतः अनुसंधान अध्ययन की क्रमबद्ध पद्वति है जिसका उद्देश्य ज्ञान के कोष से प्रमाणित एवं संवहनशील ज्ञान के अतिरिक्त वृद्धि करनी है। Research may be defined as a systematic method intended to add to available knowledge in a form that is communicable and verifiable.

अध्ययन की क्रमबद्ध पद्वति का आशय अध्ययन में वैज्ञानिक पद्वति के उपयोग से जो किसी तत्व अथवा घटनाक्रम के निष्पक्ष व व्यवस्थित अवलोकन, सत्यापन विश्लेषण में तथा विवेचन के माध्यम से किसी निष्कर्ष तक पहुंचने का मार्ग प्रषस्त करती है इस उपक्रम का उद्देश्य नवीन ज्ञान की खोज तथा पुरातन तथ्यों के तर्कसंगत विश्लेषण के माध्यम से प्रमाणित एवं सत्यापनशील ज्ञान की अतिथि अतिरिक्त विधि करनी होती है।

सामाजिक अनुसंधान से हमारा आशय सामाजिक तत्वों के अध्ययन में वैज्ञानिक विधि के उपयोग से है जिसका उद्देश्य ज्ञान के कोष में प्रमाणित तथा सत्यापनशील अतिरिक्त ज्ञान की वृद्धि करती है। भले ही उक्त ज्ञान का उपयोग किसी सिद्धान्त के निरूपण में किया जाय या किसी कला के अभ्यास में।

इस दृष्टिकोण से सामाजिक अनुसंधान का अर्थ किसी सामाजिक समस्या को सुलझाने या किसी प्राक्कल्पना की परीक्षा करनें, नवीन घटनाओं को खोजने या कतिपय घटनाओं के बीच नवीन सम्बधों को दूढने के उद्देश्य से किसी यथार्थ विधि का उपयोग है। यह यथार्थ विधि इस प्रकार की होनी चाहिए जो कि वैज्ञानिक शर्तो को पूरा करती हो तथा जिसकी सहायता से अनुसंधान किये गये विषय का सत्यापन सम्भव हों।

वस्तुतः सामाजिक शोध वह क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन विधि है, जिसके आधार पर सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में हम नवीन ज्ञान की प्राप्ति करते हैं या विद्यमान ज्ञान को विस्तृत या परिष्कृत करते है एवं विभिन्न घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों की व उपलब्ध सिद्धान्तों की पुनः परीक्षा करते है। इस प्रकार सामाजिक घटनाओं या विद्यमान सिद्धान्तों के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयोग में लायी गयी वैज्ञानिक विधि सामाजिक अनुसंधान है। इस प्रकार सामाजिक अनुसंधान की विभिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न परिभाषा दी हैं।

श्रीमती यंग के अनुसार – "We may define social research as a scientific under taking which, by means of logical and systematified methods, aims, to discover now facts or old facts, and to analyse their sequences, inter-relationship casual explanation of the natural laws which govern them."

श्री बोंगाडेस के अनुसार – ''एक साथ रहने वाले लोगों के जीवन में क्रिया–शीलता अस्तर्निहित प्रक्रियाओं का अनुसंधान ही सामाजिक अनुसंधान है।''

इसी प्रकार उपयुक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसंधान वास्तव में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के विषय में अध्ययन करने की एक वैज्ञानिक योजना है। चूंकि यह वैज्ञानिक है अतः इसके अन्दर समस्त अनुसंधान कार्य वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार ही होता है। यह तार्किक तथा क्रमबद्ध पद्धतियों पर निर्भर है तथा इन्ही पद्धतियों के द्वारा यह सामाजिक जीवन व घटनाओं के विषय में अन्वेषण करता है, पुराने सिद्धान्तों की पुनः परीक्षा करता है तथा विभिन्न सामाजिक तथ्यों के बीच पाये जाने वाले उक्त सम्बन्धों को दर्शाता है। सामाजिक शोध का एक कार्य यह भी है कि वह समस्त घटनाओं की कारण सहित व्याख्या करें तथा उन नियमों को भी समझाये जिसके द्वारा वे नियंत्रित व संचालित होती है।

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसंधान वैज्ञानिक नियमानुसार उस वैज्ञानिक क्रियाकलाप की और संकेत करता है जिसके द्वार सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में हमारें ज्ञान की वृद्धि सम्भव होती है तथा अनेक घटनाओं व उन कारणों के सम्बन्ध मे हमें वैज्ञानिक शोध प्राप्त होता है और साथ ही उन घटनाओं व इनके कारणों मे पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में हम नवीन जानकारी प्राप्त करते है। सामाजिक शोध के विषय में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि ज्ञान की प्राप्ति की वह विधि है जो कि निरीक्षण, वर्गीकरण प्रयोग तथा निष्कर्षीकरण की सामान्य वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित होती है और उसी पद्धति के द्वारा न केवल अज्ञात सामाजिक घटनाओं की भी विवेचना या विश्लेषण किया जाता है। इस अर्थ में सामाजिक शोघ वैज्ञानिक अनुसंधान का ही एक विशेष रूप है जिसका सम्पर्क सामाजिक तथ्यों, घटनाओं, मानवीय क्रियाकलाप तथा उसमें पाये जाने वाले अन्तः सम्बन्धों से होता है। सामाजिक अनुसन्धान सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में सत्य की खोज करने की एक वैज्ञानिक प्रविधि है।

सामाजिक अनुसंधान सामाजिक घटनाओं से सम्बध अर्न्तसम्बन्ध प्रक्रियाओं की व्यवस्थित खोज तथा विश्लेषण की एक वैज्ञानिक पद्धति है। इस अर्थ में सामाजिक अनुसन्धान की प्रकृति वैज्ञानिक है। विज्ञान का सम्बन्ध यथार्थ सत्य तथा वास्तविक ज्ञान से होता है। यही बात सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। सामाजिक जीवन को समझना इसका प्रमुख कार्य है और ऐसा वह ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से करता है। ज्ञान की प्राप्ति, ज्ञान की वृद्धि तथा ज्ञान की पुनः परीक्षा का अपना लक्ष्य मानकर यह सदा क्रियाशील रहता हैं। इसीलिए यंग ने कहा है कि यद्यपि व्यावहारिक लक्ष्य की पूर्ति की दिशा में इसका कुछ योगदान रहता है, पर वह आकस्मिक होता है न कि उदेश्यपूर्ण। इस तरह व्यावहारिक जीवन में उपयोगी बनने के उद्देश्य से जो मानव का कल्याण करने अथवा सामाजिक सुधार करने अथवा सामाजिक नियोजन बनाने के उद्देश्य से अपने अनुसंधान कार्य को आयोजित करना सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति के विरूद्ध

है, पर हो सकता है कि जिस ज्ञान का संयम वह करता है वह समाज सुधारकों, प्रशासकों आदि के लिए सामाजिक सुधार व नियोजन के कार्य में सहायक व उपयोगी सिद्ध हो सकें।

एक वैज्ञानिक पद्धति होने के नाते सामाजिक अनुसंधान निरीक्षण, परीक्षण, तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण व निष्कर्षीकरण की व्यवस्थिति विधि को अपनाता है। दूसरे शब्दों में वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति की एक और उल्लेखनीय विशेषता है। इससे इसकी वैज्ञानिक प्रकृति का स्पष्टीकरण होता है।

सामाजिक शोध की प्रकृति के सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि वह अपनी विशेष रूचि किसी विशिष्ट मानव–समूह, समुदाय या समाज के अन्य किसी अंग को सामाजिक प्रक्रियाओं और मानव व्यवहारों मे अन्तर्निहित समानताओं, भिन्नताओं तथा नियमों की खोज व विश्लेषण में प्रदर्शित करता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सामाजिक शोध का सम्बन्ध मानव या मानव समूह से उतना नही है जितना कि उसमें क्रियाशील प्रक्रियाओं तथा उनमें अन्तर्निहित नियमों से है। सामाजिक अनुसंधान मुख्य रूप से तीन प्रकार के हो सकते है–

(1) मौलिक या विषद्ध शोध :–

इस प्रकार के सामाजिक अनुसंधान में सामाजिक जीवन व घटनाओं के सम्बन्ध में मौलिक सिद्धान्तों व नियमों का अनुसंधान किया जाता है और इस अनुसंधान का उद्देश्य नवीन ज्ञान की प्राप्ति व वृद्धि तथा पुराने ज्ञान की पुनः परीक्षा द्वारा उसका शुद्धिकरण होता है।

(2) व्यावहारिक शोध :–

व्यावहारिक शोध का सम्बन्ध सामाजिक जीवन के व्यावहारिक पक्ष से होता है और वह सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में ही नहीं, अपितु सामाजिक नियोजन, सामाजिक अधिनियम, स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी नियम धर्म, शिक्षा, न्यायालय, मनोरजन आदि विषयों के सम्बन्ध में भी अनुसन्धान करता है और इसके सम्बन्ध में कारण सहित व्यवस्थित तर्क युक्त ज्ञान से हमकों समृद्ध करता है।

(3) कियात्मक शोध :–

क्रियात्मक शोध व्यावहारिक शोध से अनेक अर्थ में मिलता–जुलता है, क्योंकि इसका भी सम्बन्ध सामाजिक जीवन की ऐसी समस्याओं तथा घटनाओं से होता है जिनका कि व्यावहारिक या क्रियात्मक महत्व हो। जब सामाजिक शोध अध्ययन के निष्कर्षो को क्रियात्मक रूप देने की किसी तात्कालिक अथवा भावी योजना से सम्बद्ध होता है तो इसे क्रियात्मक शोध कहा जाता है। इस प्रकार क्रियात्मक शोध वह अनुसंधान है जो कि किसी सामाजिक समस्या या घटना के क्रियात्मक पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और साथ ही अनुसंधान के निष्कर्षो का उपयोग विद्यमान सामाजिक अवस्थाओं में परिवर्तन लाने की योजना के भाग के रूप में करता हैं।

सामाजिक अनुसंधान का व्यवहारिक उपयोग :–

वास्तव में सामाजिक अनुसंधान सामाजिक जीवन के सम्बन्ध मे हमारे ज्ञान का एक महत्वपूर्ण शोध है। यह ज्ञान हमे सामाजिक जीवन को अधिक प्रगतिशील बनाने के लिए आवश्यक योजना बनाने में मदद करता है। इस प्रकार सामाजिक जीवन तथा विभिन्न घटनाओं के सम्बन्ध में हमे जो जानकारी प्रदान करता है उसका उपयोग हम अपने व्यावहारिक जीवन में भी कर सकते है। इस दृष्टिकोण से सामाजिक शोध का व्यावहारिक उपयोग निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं–

(अ) सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में सहायता करता है। प्राचीन समाज और जीवन अत्यन्त ही सरल और सादा था। उस समय मनुष्य की आवश्यकताएं भी सीमित थी। अतः उस सभ्य सामाजिक समस्याओं की प्रकृति भी अधिक जटिल न थी। पर आधुनिक समाज में परिस्थितिया पलट गयी है। विज्ञान व प्रौद्योगिकीय प्रगति के साथ–साथ आधुनिक समाज उत्तरोतर जटिल होता जा रहा है और उसके साथ–साथ सामाजिक जीवन और उससे समबद्ध समस्यायें भी उतनी ही जटिल होती जा रही है। इन्हें सुलझाने के लिए इनके समबन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है और यह ज्ञान हमें सामाजिक अनुसंधान से सरलतापूर्वक प्राप्त होता है। इसे ज्ञान की सहायता से राष्ट्रीय नेता, समाज सुधारक तथा विभिन्न प्रशासकों के लिए आधुनिक जटिल समस्याओं को सुलझाना केवल समभव ही नहीं, अपितु सरल भी होता है।

(ब) सामाजिक अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान, सामाजिक तनाव को दूर करके सामाजिक संगठन को बनायें रखने में मदद कर सकता है। अनेक बार सामाजिक घटनाओं या तथ्यों के सम्बन्ध मे हमारी गलत धारणायें सामाजिक तनाव को जन्म देती है। जिस प्रकार अनेक दिनों तक लोग यह समझते रहे कि प्रजाति का समबन्ध भाषा, धर्म, संस्कृति या राष्ट्र से है। इसी गलत आधार पर प्रजाति की श्रेष्ठता की कथा को प्रचलित कर लाखों निर्दोष यहूदियों के प्राण लिए, उससे तो संसार परिचित है। इसी प्रकार जाति, राष्ट्र, विवाह, सन्तान आदि के सम्बन्ध में भी अनेक गलत धारणायें प्रचलित है। इनको दूर किये बिना सामाजिक जीवन को प्रगतिपील बनाना कदापि सम्भव नहीं हैं। सामाजिक अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान सामाजिक जीवन में जड़ पकड़े हुए अनेक अन्ध विश्वासों तथा गलत धारणाओं को दूर करने में सहायक सिद्ध होता है।

(स) सामाजिक अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान सामाजिक योजनाओं को बनाने में मदद कर सकता है। सामाजिक योजनायें समाज को पुर्नजीवित करती है और उसमें महत्वपूर्ण व युगोचित परिवर्तन लाती हैं पर सामाजिक योजनाओं की सफलता दो बातों पर निर्भर करती है प्रथम तो यह कि योजना को कितने प्रभावपूर्ण व व्यावहारिक ढंग से बनाया गया है और दूसरा यह कि उस योजना को क्रियान्वित करनें मे जनसहयोग किस सीमा तक प्राप्त हो सकता है। इन दोनो बातों के सामाजिक अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान उपयोगी सिद्ध होता है। सामाजिक अनुसंधान हमें विभिन्न सामाजिक घटनाओं में अन्तर्निहित नियमों से परिचित करवाता है और सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों वि समस्याओं की कारण सहित व्याख्या प्रस्तुत करता है। ये दोनों ही बातें योजना को अधिकाधिक महत्वपूर्ण व व्यावहारिक बनाने में सहायक सिद्ध होती है। हमें इस क्षेत्र में ज्ञान देकर समाज बहुत कल्याण कर सकता हैं।

(द) सामाजिक अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान सामाजिक नियंत्रण में सहायक सिद्ध हो सकता है क्योंकि घटना–विशेष पर हमारा नियंत्रण उतना ही अधिक होगा जितना कि उस घटना के विषय में हमारा ज्ञान बढ़ता जायेगा। उदाहरण के लिए विद्यार्थी वर्ग में अर्न्तनिहित प्रक्रिया, उनके विचारों, भावनाओं व आवश्यकताओं के समबन्ध में हमें जितना अधिक

ज्ञान होता उतना अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से उस पर हम नियंत्रण पा सकेगें। इसी प्रकार दहेज देने या लेने की बुरी प्रथा को एक सामाजिक अधिनियम पारित करके हम उसी अवस्था में रोक सकते है जबकि हमे उस प्रथा से सम्बद्ध अन्य परिस्थितियों व कारणों का सही ज्ञान हो। इस प्रकार का निर्भर योग्य ज्ञान हमे सामाजिक शोध से ही प्राप्त हो सकता हैं।

समाजिक अनुसंधान सामाजिक परिवर्तन की दिषा को समझने के लिये भी आवश्यक है। प्रगतिशील देश में पहले की अपेक्षा अब परिवर्तन की गति तेज होना स्वाभाविक है, पर यह प्रगति किस दिशा में हो रही है जब तक हमें यह ज्ञान न हो तब हम सामाजिक प्रगति के निर्धारित लक्ष्य की आर व्यवस्थित रूप से आगे नहीं बढ़ सकते है। इस दिशा का निर्धारण सामाजिक परिवर्तनों के कारण तथा परिणामों के सम्बन्ध में किये गये शोध से प्राप्त ज्ञान के आधार पर ही किया जा सकता है।

यद्यपि सामाजिक शोधकर्ता का कोई भी सम्बन्ध सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान को व्यावहारिक रूप देने से नहीं होता है। वह स्वयं किसी व्यावहारिक कार्य के लिये सामाजिक समस्याओं को सुलझानें की योजना बनाने के लिए अपने ज्ञान के उपयोग नहीं करता, यह काम समाज सुधारको राष्ट्रीय नेताओं तथा प्रशासकों का होता है। सामाजिक शोध का कार्य व उद्देश्य तो केवल ज्ञान की प्राप्ति, उसका विस्तार व पुनः परीक्षण है। श्रीमती यंग ने लिखा है कि सामाजिक शोध का प्राथमिक उद्देश्य चाहे वह तत्कालिक हो या दूर सामाजिक जीवन को समझना और तद् द्वारा उस पर अधिक नियंत्रण प्राप्त करना है।

सामाजिक अनुसंधान मानवीय क्रिया–कलापों या सामाजिक घटनाओं का प्रत्यक्ष अवलोकन करता है और इसी के द्वारा ही वैज्ञानिक ढंग से मनुष्य के सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसके महत्व को बताते हुए श्री स्टाडफर ने लिखा है कि यदि समाज–विज्ञान को अपना महत्व बढ़ाना है तो उसको अपने व्यावहारिक पक्ष पर दल देना होगा। उदाहरणार्थ, यदि समाज–विज्ञान स्पष्ट रूप से यह दर्षा सकें कि एक परामर्श देने वाली व्यवस्था सार्वजनिक स्कूलों में किस भांति सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो सकती है तो यह स्पष्ट है कि समाज विज्ञान के महत्व की सार्वजनिक स्वीकृति बढ़ जायेगी।

इस प्रकार हम कह सकते है कि वह हमारे व्यावहारिक जीवन में आने जाने वाली समस्याओं तथा अन्य उपचार करनें के लिये आवश्यक सिद्वान्तों के विषय में हमारी चिन्तन–प्रक्रियाओं को उभाड़ सकता हैं।

इस प्रकार सामाजिक अनुसंधान के द्वारा ही व्यावहारिक जीवन से सम्बद्ध विषयों तथा समस्याओं के सम्बन्ध मे हमे यथार्थ जानकारी मिलती है। इस जानकारी के पश्चात् ही उन पर नियंत्रण करने के साधनों को ढूढ़ा जा सकता है। इस प्रकार सामाजिक अनुसंधान का अत्यधिक महत्व हैं।

अनुसन्धान के प्रमुख चरण

1 – अध्ययनगत समस्या का चयन एवं निरूपण

2 – वांछित तथ्यों के संकलन की रूप रेखा

3 – तथ्य संकलन

4 – संकलित तथ्यों का संगठन व विश्लेषण

5 – सामान्यीवरण एवं प्रतिवेदन प्रस्तुतिकरण

STEPS IN SOCIAL RESEARCH

1. ***SELECTION AND FORMULATIONS OF PROBLEMS***

(a) Statement of the problem

(b) Statement of objective

(c) Major questions

(d) Formulation of Hypothesis

(c) Working definitions

(f) Definition of the problem-

2. ***DESIGN FOR SECURING EVIDENCES***

(a) Universe

(b) Type of Survey : Sample or Census

(c) Size, type and methods of drawing sample

3. ***METHODS OF DATA COLLECTION***

4. ***DATA COLLECTION***

5. ***ORGANIZATION ANALYSIS OF DATA***

(a) Coding

(b) Classifications

(c) Statistical analysis-

6. GENERALIZATION AND REPORTING

बोध्यगम्य प्रश्न :–

1. सामाजिक अनुसंधान से क्या समझते है इसके अर्थो व प्रकारों की विवेचना कीजिए?
2. सामाजिक अनुसंधान के प्रमुख चरणों की व्याख्या कीजिए?
3. सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति बताइए तथा इसके व्यावहारिक उपयोगों की व्याख्या कीजिए?

.....

अध्याय–2

अनुसंधान के विभिन्न प्रकारों की विवेचना
Types of Social Research

अनुसंधान का अर्थ : (Meaning of Research)

सामान्यतया ज्ञान की किसी विशिष्ट शाखा में जिज्ञासा रखते हुए उस दिशा में खोज द्वारा उपलब्ध होने वाली सामग्री का क्रमशः परीक्षण तथा समीक्षा ही अनुसंधान है। अनुसंधानकर्ता किसी विशेष तथ्य को लक्ष्य में रखते उस दिशा में अनुसंधान करता हैं, जिसे अनुसंधान, अन्वेषण, शोध आदि की संज्ञा दी जाती है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से अनुसंधान शब्द 'अनु' तथा 'संधान' के योग से बना है जिसका अर्थ है विशिष्ट लक्ष्यों को सम्मुख रखकर उसकी पूर्ति के लिए दिशा विशेष में कार्य करने के लिए निरन्तर शोध कार्य में संलग्न रहता है। शोध का अर्थ उपलब्ध सामग्री का पुनः अनुशीलन एवं सर्वेक्षण करना है। अनुसंन्धान से तात्पर्य केवल तथ्यों की खोज तक सीमित नहीं, वरन् खोज के उपरान्त उन पर पूर्ण रूप से विचार करना भी इसमें आवश्यक है।

अनुसंधान की परिभाषा : (Definition of Research)

1. "Research may be defined as systematic investigation intended to add to available knowledge in a form that is communicable and verifiable."

''अनुसंधान वह क्रमबद्ध पद्वति है जिसका उद्देश्य ज्ञान के कोष में प्रमाणिक एवं संवेदनशील ज्ञान की अतिरिक्त वृद्धि करता है।''

2. एडवांस्ड लर्नर डिक्पनरी आफकरेन्ट इंगलिष के अनुसार – ''किसी भी ज्ञान की शाखा में नवीन तथ्यों की खोज के लिए सावधानीपूर्वक किये गये अन्वेषण या जॉच पड़ताल को अनुसंधान की संज्ञा दी जा सकती है।''

3. दि न्यु सेन्चुरी डिक्षनरी के अनुसार – ''तथ्य या सिद्धान्तों की खोज के लिए किसी वस्तु या किसी के लिए सावधानीपूर्वक किया गया एक अन्वेषण. किसी एक विषय में किया गया मिश्रण निरन्तर साधानीपूर्वक जांच या अनुसन्धान कहलाता हैं।''

4. लुण्डवर्ग के शब्दों में – ''अनुसन्धान वह हैं जो अवलोकित तथ्यों के सम्भावित वर्गीकरण, सामान्यीकरण और सत्यापन करते हुए पर्याप्त रूप में वस्तु विषयक और व्यस्थित हो।''

5. वाल्टर ई. इस्पाट और राइझन हार्ट जे. स्पेन्सर के अनुसार – ''सत्य तथ्यों की निश्चिताओं के लिये किया गया कोई विद्वत्तापूर्ण अन्वेषण अनुसन्धान कहलाता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हैं कि अनुसन्धान, नवीन तथ्यों या सिद्धान्त की खोज के लिये संचालित किया जाता है। नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए सावधानीपूर्वक जांच पर्याप्त अवलोकन एवं वस्तु विषयक अध्ययन करता होता है। इस पद्धिति द्वारा जो नयें तथ्य

प्रकाश में आतें हैं वे ज्ञान वृद्धि के लिए मार्गदर्शक हैं। इस प्रकार ज्ञान के कारण में अतिरिक्त ज्ञान की वृद्धि अनुसन्धान होती हैं।

अनुसन्धान वस्तुओं, प्रमाणों अथवा प्रतीकों का ज्ञान हैं विस्तार के लिए शोधन तथा सत्यापन के सामान्यीकरण के उद्देश्य से किया जाता हैं, चाहें वह ज्ञान किसी सिद्धान्त के निर्माण में अथवा कला को व्यवहार में लानें में सहायक हो।

वैज्ञानिक अनुसन्धान वह क्रमबद्ध वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग द्वारा किसी समस्या के समाधान के लिये नये तथ्यों का अन्वेषण अथवा पुरातन तथ्यों की सत्यापनशीलता उनमें पाये जाने वाले अनुक्रमों, अन्तः सम्बन्धों, कारण सहित व्याख्याओं तथा उनकी संचालित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण किया जाता है।

अनुसंधान के विभिन्न प्रकार अग्रलिखित है–

1. मौलिक या विशुद्ध अनुसंधान (Fundamental or Pure Research)
2. व्यावहारिक अनुसंधान (Applied Research)
3. क्रियात्मक शोध (Action Research)
4. मूल्यांकनात्मक अनुसंधान (Evaluacive Research)

(1) मौलिक या विशुद्ध अनुसंधान :–

मौलिक अनुसंधान के अन्तर्गत सामाजिक जीवन तथा घटनाओं के सम्बन्ध में मौलिक सिद्धान्तों या नियमों की खोज की जाती है। इस अनुसंधान का उद्देश्य नवीन ज्ञान की प्राप्ति व वृद्धि पुराने ज्ञान की पुनः परीक्षा द्वारा उसका शुद्धिकरण होता है ऐसी खोज नवीन तथ्यों व घटनाओं का अध्ययन किया जाता है और साथ ही इस बात की भी जाँच की जाती है जो की प्रचलित पुराने सिद्धान्त व नियम है। वर्तमान परिस्थितियों में भी पुराने नियम व सिद्धान्त तो खरे उतरें, पर यह भी हो सकता है कि नवीन परिस्थितियों के अनुसार उनके कुछ आवश्यक हेर–फेर या सुधार करना जरूरी हो जाये।

मौलिक अनुसंधान के अन्तर्गत नये सिद्धान्त व नियमों की खोज नवीन परिस्थितियों तथा नवीन समस्याओं के उत्पन्न होने पर की जाती है। ऐसा इस उद्देश्य से किया जाता है कि नवीन सिद्धान्तों का वर्तमान परिवर्तित परिस्थितियों के साथ अधिकाधिक मेल बैठ जाये और हम उनके सम्बन्ध में अपने नवीनतम ज्ञान के सहारे विधमान परिस्थितियों की चुनौती का सामना अधिक सफलतापूर्वक कर सके। इस दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि मौलिक शोध की प्रकृति आधारभूत रूप में सैद्धान्तिक है क्योंकि इसका एकमात्र उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति, वृद्धि तथा शुद्धिकरण होता है। सम्य की खोज करना इसका मुख्य लक्ष्य होता है। इसलिए समस्त घटनाओं के अनुसंधान में यह केवल इसी लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति सजग और प्रयत्नशील रहता है। जब अनुसंधनकर्ता नवीन घटनाओं के सम्बंध में अनुसंधान करता है

तो विद्यमान ज्ञान की वृद्धि होती है और जब वह परिवर्तित परिस्थितियों के सन्दर्भ मे उसके ज्ञान में आवश्यक सुधार हो जाता है।

बी.सी. एन्ड्रियास के अनुसार – ''मौलिक अनुसंधान का प्रधान गुण नई रचनाओं का निर्माण करना है।''

पी.वी. यंग के शब्दों में– ''मौलिक अथवा शुद्ध अनुसंधान की संज्ञा उसे दी जाती है जिसके अन्तर्गत ज्ञान की प्राप्ति के लिए हो।''

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विशुद्ध अनुसंधान वह है, जिसमें ज्ञान के लिए उसके व्यावहारिक पक्ष के देखें बिना प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप खगोलशास्त्र के अन्तर्गत वैज्ञानिक पद्धतियों को आधार पर तथ्यों अथवा सिद्धान्तों का अन्वेषण किया जाता है ऊर्जा को अधिक शुद्ध करने के लिए किये गये अनुसंधान को हम शुद्ध व मौलिक अनुसंधान की संज्ञा में रख सकते है। उदाहरणस्वरूप आइंस्टीन ने पदार्थ तथा ऊर्जा को अधिक शुद्ध करने के लिए किये गये अनुसंधान को हम शुद्ध व मौलिक अनुसंधान की संज्ञा में रख सकते हैं।

अतः अपने अनुसंधानो के द्वारा जो सामाजिक शोध ज्ञान की प्राप्ति परिमार्जन व परिवर्द्धन को अपना लक्ष्य मानता है उसे मौलिक अनुसंधान कहते है। विशुद्व अनुसंधान के अन्तर्गत वैज्ञानिक पद्धति के अनुमानित परिकल्पना के आधार पर किसी लक्ष्य या सिद्वान्त का शोध करना होता है।

इस प्रकार मौलिक या विशुद्ध अनुसंधान के अन्तर्गत अग्रलिखित बातें सम्मिलित होती है, जो अग्रलिखित है–

1. सामाजिक घटनाओं एवं जटिल तथ्यों के बारें में जानकारी प्रदान करना– विशुद्ध अनुसंधान का प्रमुख कर्तव्य है कि समाज में घट रही महत्वपूर्ण घटना की जानकारी प्रदान करें। इन घटनाओं की जानकारी दिये बिना व्यावहारिक रूप में किसी समस्या का समाधान नही निकाला जा सकता। अब घटना की ही जानकारी नही रहेगी तो हम किस प्रकार कोई निर्णय ले सकते है या निष्कर्ष की ओर प्ररित हो सकते है। इसके अतिरिक्त जपटल तथ्य के बारे में बोध होना परमावश्यक है। इन्हीं जटिल तथ्यों के आधार पर व्यावहारिक अनुसंधान के प्रगति चरणों में सहायता मिलती हैं।

2. विशुद्ध अनुसंधान व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में सहायता करता है– (IF offers assistsnce in solving practical problems)

   सैद्वान्तिक अनुसंधान हमें सामग्री प्रदान करता है। इस सामाग्री के आधार पर हम किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। उदाहरणार्थ– सैद्धान्तिक ज्ञान हमे जानकारी प्रदान करता है कि सामाजिक पृष्ठभूमि का वैद्विक उपलब्धि पर बड़ा असर पड़ता है। जिस परिवार के बच्चे की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पिछड़ी हुयी है, उस बच्चे की बुद्धि, उपलब्धि प्रायः उस बच्चे से निम्न स्तर की होगी जिसकी सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि अच्छी और सुदृढ़ हैं।

3. सामाजिक घटनाओं में पाये जाने वाले प्रकार्यात्मक सम्बन्धों का पता लगाया जाता है। इन्ही पर सामाजिक जीवन की सक्रियता तथा गतिशीलता निर्भर होती है।

4. व्यावहारिक समस्याओं में पाये जाने वाले केन्द्रीय तत्वों (Central Element) का पता लगाती है जो परम्पराओ की समस्यावादी दृष्टिकोण से देखते है वे मुख्य तत्वों की एक प्रकार से अवहेलना करते है। इसका परिणाम यह होता है कि समाधान निष्फल हो जाता है।.

5. **गुड़े तथा हाट के अनुसार**– ''विशुद्ध अनुसंधान प्रशासन के लिए प्रमाणिक प्रणाली बन जाती है। विशुद्व अनुसंधान प्रशासनिक ढ़ाचे पर तभी प्रभाव डालता है। जब प्रशासक स्वयं इसकी उायागिता को सीखता है। प्रशासकों के अलावा गैर सरकारी संगठन भी इस अनुसंधान का प्रयाग अपने उद्योग–धन्धों में करते हैं।

6. मौलिक या विशुद्ध अनुसंधान के अन्तर्गत समस्याओं के विकल्प अनुसंधान के अन्तर्गत समस्याओं के विकल्प अनुसंधान (Alternative Solution) प्रदान किया जाता है।

7. इसके अन्तर्गत स्वभाविक या सामान्य नियमों को ज्ञात किया जाता है, जिसमें सामाजिक जीवन और उसकी प्रमुख घटनायें निर्देशित होती है।

8. सैद्धान्तिक अनुसंधान बहुत वैकल्पिक समाधान विकसित करता है ताकि वैकल्पिक व्यय अन्ततोगत्वा न्यूनीकृत कर दिया जाय।

(2) व्यावहारिक अनुसंधान :–

समाजिक अनुसंधान का द्वितीय प्रकार व्यावहारिक अनुसंधान है। सामाजिक अनुसंधान की इस श्रेणी में वे अनुसंधान आते है जिनके द्वारा किसी समस्या विशेष का समाधान किया जाता है। इसके अन्तर्गत विज्ञान के कुछ विशेष सिद्धान्तों व नियमों का किसी विशेष मामले पर प्रभाव जाना जाता है।

एण्यिास के अनुसार– ''सामाजिक अनुसंधान में यदि अनुसंधानकर्ता तथ्यों द्वारा किसी क्रियात्मक समस्या का समाधार करें तो वह अनुसंधान व्यावहारिक अनुसंधान की श्रेणी में आता है।''

श्रीमती यंग के अनुसार– ''खोज का एक निश्चित सम्बन्ध लोगों को प्राथमिक आवश्यकताओं तथा कल्याण से होता है। समस्त ज्ञान सारभूत रूप से उपयोगी इस अर्थ में है कि वह एक सिद्धान्त के निर्माण में या एक कला को व्यवहार में लाने में सहायक होता है। सिद्धान्त तथा व्यवहार में आगे चलकर बहुधा एक दूसरे से मिल जाते है और वह सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में नहीं, अपितु सामाजिक नियोजन, सामाजिक अधिनियम, स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी नियम, धर्म, शिक्षा, न्यायालय, मनोरंजन आदि के सम्बन्ध में भी अनुसंधान करता है और उनके सम्बन्धो के कारण सहित व्याख्या व तर्कयुक्त ज्ञान को समृद्ध करता है।''

''व्यावहारिक अनुसंधान की संज्ञा उसे दी जाती है, जिसमें ज्ञान प्राप्ति मानवीय भाग्य के सुधार में सहायता प्रदान कर सके।''

व्यावहारिक अनुसंधान के अन्तर्गत शुद्ध शोध के परिणाम को व्यावहारिक बनाने का प्रयत्न किया जाता है। आइंस्टीन के शुद्ध शोध का आधार बनाकर अणु बम बनाने का जो शोध कार्य किया गया, वह व्यावहारिक अनुसंधान की श्रेणी में आता है।

गुड़ और हाट्ट ने व्यावहारिक अनुसंधान के चार पक्षों पर चर्चा की है–

1. नये तथ्यों को प्रदान करना –

अध्ययन करने से पूर्व सम्पूर्ण जानकारी की आवश्यकता होती है। सामग्री का संकलन करना पड़ता है। जब आकड़े है तो समस्या का विश्लेषण आसानी से किया जा सकता है। ये आकड़े जनसंख्या, चोरी–डकैती या विवाह–विच्छेद के सम्बन्ध में समस्या के समाधान में बहुत सहायक होते है। इसके आधार पर नयें तथ्यों का अविष्कार होता है, पुराने तथ्यों में संशोधन किया जाता है और नये ढंग से उनकी परिभाषायें की जाती है।

गुड़े तथा हाट्ट लिखते है कि ''व्यावहारिक सर्वेक्षण के द्वारा किसी क्षेत्र की समस्या को दूर किया जा सकता है।''

संक्षेप में यदि व्यावहारिक अनुसंधान को ठीक ढंग से नियोजित करें तो नवीन सूचना सैद्धान्तिक रूप से लाभदायक हो सकती है, जैसे समाजीकरण और समुदाय की एकता के बारे में जानकारी प्राप्त करना।

2. विशुद्ध अनुसंधान सिद्धान्त की कसौटी पर कम कसता है–

अनुसंधान सामाजिक निरीक्षणकर्ता के रूप में राजनीतिक संघर्ष का भी अध्ययन करता है।

व्यावहारिक अनुसंधान सुन्दर अवसर प्रदान करता है कि किस प्रकार सिद्धान्त का परीक्षण किया जाये । वह स्थिति को भलीभाँति जाँच–पड़ताल एवं विश्लेषण कर साधान प्रदान करता है। सैद्धान्तिक ज्ञान के आधार पर समाजशास्त्री उप कल्पना का निर्माण कर सकता है जिससे उसमें भविष्यवाणी की सामर्थय बढ़ जाती है। यदि यह सिद्धान्त के बारे में ही स्पष्ट नहीं है तो ऐसी स्थिति में भविष्यवाणी करना खतरे से खाली नही होगा। उदाहरण के लिये यदि वह विवाह – विच्छेद, जातीय समुदाय, सामाजिक एकता जैसे शब्दों से ही भलीभाँति परिचित नही है तो वह यह बताने में असमर्थ होगा कि विवाह–विच्छेद क्यों होते है? इन्हें किस प्रकार रोका जा सकता है। इसमें किस बात की आवश्यकता होती है जिसके फलस्वरूप लोग इसकी ओर प्रवृत्ति ही न हो आदि। अतः विशुद्ध अनुसंधान व्याप्त सिद्धान्तों की परीक्षा कर उससे झूठ और सच, गुण एवं अवगुणों का पता आसानी से लगा सकता है।

3. धारणा सम्बन्धी स्पष्टीकरण में सहायक है :

व्यावहारिक अनुसंधान के अन्तर्गत व्याप्त धारणाओं में सुधार किये जाने की काफी गुंजाइश होती है। आज के चन्द्रयुग में कोई बात असम्भव नहीं है। अतः जैसे–जैसे प्रयोग संचालित किये जाते है, या तकनीकी विद्या को प्रयोग में लाया जाता है, सामाजिक धारणायें और भी स्पष्ट भी होती जा रही है। अतः व्यावहारिक अनुसंधान द्वारा धारणाओं की सत्यता की जाँच होती है। यदि वे सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल नही है तो समाजवास्त्री इस बात का पूरा प्रयास करेगा कि उनकी आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल ही व्याख्या की जाये।

व्यावहारिक अनुसंधान के द्वारा न केवल धारणाओं के स्पष्टीकरण में सहायता मिलती है बल्कि इनके विकास में भी सहायक है। समाज के नये क्षितिज इसका नया वातावरण हमें बाध्य कर रहा है कि हम शोध द्वारा उनके महत्व को समझे और उनकी प्रगति में भरसक प्रयत्न करें।

4. व्यावहारिक सिद्धान्त पूर्व से विधमान सिद्धान्तों को स्वीकृत कर सकता है –

समस्या के समाधान के लिए हम एक ही विषय पर निर्भर नही रह सकते गन्दी बस्ती के सुधार हेतु अपराध शास्त्री, सामाजिक कार्यकर्ता, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री तथा अन्य द्वारा किये गये अध्ययनों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार एक मूर्त समस्या के समाधान के लिए विभिन्न क्षेत्रों में हुए सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक अनुसंधानों की उपलब्धियों के कुछ एकीकरण की आवश्यकता होती है। बालको में अपराध की प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही हैं इसके लिए कम आय, अशिक्षा, अज्ञान, बुरी संगत, गरीबी आदि उत्तरदायी है। कुछ कारण तुरन्त प्रयत्न प्रभाव डालने वाले है, कुछ देरी से प्रभाव डालने वाले। जब हम यह पता लगाने का प्रयत्न करते है कि किन तत्वों का अधिक महत्व दिया जाना चाहिए तो इसका पता व्यावहारिक अनुसंधान द्वारा ही हो सकता है।

व्यावहारिक अनुसंधान में भी अनुसंधान के उन्हीं उपकरणों का उपयोग किया जाता है, जिनका कि मौलिक या विशुद्ध विज्ञान में और इसलिए इसके द्वारा प्रस्तुत व्यावहारिक ज्ञान बड़े महत्व के साथ ही यथार्थ सिद्ध होता है।

गुड़े तथा हाट्ट के अनुसार– यह नही सोचना चाहिए कि मौलिक या विशुद्ध तथा व्यावहारिक अनुसंधान एक दूसरे के विरोधी है। दो परस्पर अपवजी नही है। दोनों के मध्य अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है तथा इससे भी अधिक हो सकता है। अच्छा सैद्धान्तिक अनुसन्धान व्यावहारिक समस्याओं के लिये उपयोगी हो सकता है तथा व्यावहारिक अनुसंधान सैद्धान्तिक समाजशास्त्र का योगदान कर सकता है।

वास्तव में व्यावहारिक अनुसंधान विद्यमान सिद्धान्त का एकीकरण करता है। अन्त में पी.वी. यंग के शब्दों में – ''यथार्थ में इन दो प्रकारों के अनुसंधानों के मध्य कठोर विभाजन रेखा नही खीची जा सकती है, प्रत्येक (मौलिक और व्यावहारिक) अपने विकास और सत्यापन के लिये एक दूसरे पर निर्भर है।''

(3) कियात्मक अनुसंधान :–

कियात्मक अनुसंधान व्यावहारिक अनुसंधान से अनेक अर्थो में मिलता जुलता है क्योंकि इसका भी सम्बन्ध सामाजिक जीवन की ऐसी समस्याओं तथा घटनाओ से होता है जिनका कि व्यावहारिक या क्रियात्मक महत्व हो। जब सामाजिक अनुसंधान अध्ययन के निष्कर्षों को क्रियात्मक महत्व हो। जब सामाजिक अनुसंधान अध्ययन के निष्कर्षो को कियात्मक रूप देने की किसी तत्कालिक अथवा भावी योजना से सम्बद्ध होता है तो उसे क्रियात्मक अनुसंधान कहा जाता है।

क्रियात्मक अनुसंधान किसी सामाजिक समस्या या घटना के क्रियात्मक पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और साथ ही अनुसंधान के निष्कर्षो का उपयोग विद्यमान सामाजिक अवस्थाओ में परिवर्तन लाने की योजना का एक भाग के रूप में करता है।

गुडे तथा हाट्ट के अनुसार– ''क्रियात्मक शोध उस कार्यक्रम का अंश होता है जिसका कि लक्ष्य विद्यमान अवस्थाओं को परिवर्तित करना होता है चाहे वह गन्दी बस्ती की अवस्थाये हो या प्रजातीय तनाव हो या संगठन की प्रभावशीलता हो।''

उदाहरणार्थ – यदि एक शोध कार्य इस उद्देश्य को सामने रखते हुए किया जा रहा है कि उसके निष्कर्षो को गन्दी बस्तियों की सफाई के कार्यक्रम के उपयोग में लाया जायेगा, अर्थात् उन गन्दी बस्तियों में इस समय रहने वाले व्यक्तियों के जीवन में और गन्दी बस्तियों की सामान्य अवस्थाओं में परिवर्तन लाने की किसी भावी योजना में उस शोध से प्राप्त ज्ञान उपयोगी सिद्ध होगा, उसे क्रियात्मक शोध कहेगें।

सर्वप्रथम एडम करली ने अपने महत्वपूर्ण लेख में कियात्मक अनुसंधान के वैज्ञानिक आधारों का विवेचन प्रस्तुत किया गया था।

सामाजिक अनुसंधान कर्ताओं ने क्रियात्मक अनुसंधान प्रकार को सैद्धान्तिक रूप में समझने की चेष्टा नहीं की है, क्योंकि इसके सैद्धान्तिक रूप वही है जो सामाजिक विज्ञानों के हैं। इसका प्रमुख पक्ष अनुसंधान एवं उपचार है।

क्रियात्मक अनुसंधान की एक छोर वैज्ञानिक पद्धति को छूती है और दूसरी छोर समाज सुधार जैसी क्रियाओं को।

क्रियात्मक शोध में शोधकर्ता को प्रारम्भ से ही कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना पड़ता है। ये इस प्रकार है–

(अ) <u>अध्ययन वे समय घटना या समस्या के वास्तविक किया पक्ष पर ध्यान</u> :–

इसका तात्पर्य यह है कि जिस घटना का अध्ययन शोधकर्ता कर रहा है उसमें अन्तर्निहित मानवीय कियाओं, आधारों व नियमों के प्रति वह अत्यधिक सचेत रहता है। समस्या के चुनाव के सम्बन्ध में, उस समस्या से समबद्ध प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने के सम्बन्ध में, उस घटना की वास्तविक क्रियाशीलता को मालूम करने में यहाँ तक कि तथ्यों के संकलन में भी क्रियात्मक एजेंसियों का सहयोग अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध होता है।

(ब) समस्या का घटना के सम्बन्ध में ज्ञान :–

क्रियात्मक शोध में शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि उसे समस्या या घटना के सम्बन्ध में कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य ही हो। शोधकर्ता सम्पूर्ण समाचार या घटना को तथा उसमें भाग लेने वाले व्यक्तियों या मानव समूहों के व्यवहार प्रतिमानों को समझने का प्रयत्न करता है।

(स) सहयोगी की प्राप्ति :–

शोधकर्ता को इस बात का निरन्तर प्रयास करना पड़ता कि उसे अपने कार्य में कम से कम विरोध का सामना करना पड़ें। क्रियात्मक शोध का प्राथमिक उद्देश्य विद्यमान अवस्थाओं में परिवर्तन लाना होता है।

(द) प्रतिवेदन को प्रारम्भ में ही अन्तिम रूप न देना :–

क्रियात्मक शोध की रिपोर्ट को एकदम अन्तिम रूप देकर प्रस्तुत नही करना चाहिए। पहले अन्तरिम करनी चाहिए, जिससे कि उसमें प्रभावित करने वाले व्यक्तियों अथवा समूहों की प्रतिक्रियाओं को जाना जा सके।

क्रियात्मक अनुसंधान योजना के विभिन्न कारण :

क्रियात्मक अनुसंधान योजना का आधार समस्या का चुनाव एवं उसके विभिन्न आयामों की हमें निश्चित जानकारी हो जानी चाहिए। समाज में अनेक प्रकार की समस्यायें होती हैं, परन्तु सभी समस्याओं के तत्कालिक उपचार की आवश्यकता नहीं होती।

जब समस्या परिभाषित हो जाती है तब हम उन कारणों की खोज में आगमन और निगमन पद्धतियों के प्रयोग विभिन्न प्रविधियों के द्वारा करते है। इसके अन्तर्गत समस्या के कारणों का विश्लेषण करते है। अनुसंधानकर्ता का दृष्टिकोण किसी मूल कारण की खोज करना नही होता, बल्कि ऐसे सभी कारणों की खोज होती है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में समस्या को जन्म देते है।

कारणों की खोज जो अनुसंधान का लक्ष्य होता है, कुछ ऐसे प्रयोगों पर आश्रित हैं, जो सामाजिक अनुसंधान में प्रचलित है। इसके अन्तर्गत उप कल्पनाओं का निर्माण एवं परीक्षण किया जाता है।

उपचार सम्भावना अनुसंधानकर्ता स्पष्ट संकेत कर देता है कि समस्या के किन कारणों का उपचार किया जा सकता है और किस सीमा तक समस्या का निराकरण सम्भव हैं।

समस्या के निराकरण में प्राथमिकता के क्रम बनाते है। प्राथमिकता उन्ही अयामों को दी जाती है जो मुख्य कारणों से सम्बन्धित है।

अन्तिम कारणों में क्रियात्मक अनुसंधान के व्यावहारिक पक्ष हमारे समक्ष उपस्थित होते है जैसे क्रियात्मक संरचना एवं क्रियात्मक मूल्यांकन सरचना के अन्तर्गत हम उपचार की

पूरी योजना बनातें हैं और मूल्यांकन के अन्तर्गत यह जाननें का प्रयास करते है कि समस्याओं का निराकरण किस सीमा तक हो रहा है।

क्रियात्मक अनुसंधान सुधार पक्ष से सम्बंधित होता है इसलिए मौलिक अनुसंधान क्षेत्र के विशेषज्ञ इसे सैद्धान्तिक नहीं मानते, बल्कि व्यावहारिक मानते है। विशुद्ध वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ–साथ प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी क्रियात्मक अनुसंधान होते रहते है। इसी प्रकार वैज्ञानिक सामाजिक अनुसंधान की आधारभूत मान्यताओं, पद्धतियों एवं प्रविधियों के क्रियात्मक अनुसंधान में प्रयोग करते है। अतः क्रियात्मक अनुसंधान भी वैज्ञानिक होता है, यद्यपि उसका उपचार पक्ष सामाजिक मूल्यों और समस्याओं पर आधारित होता है।

ACTION (--) RESEARCH PROJECT

BASE LINE SURVEY

PROJECT - IMPLEMENTATION

PERIODICAL ASSESSMENT

Objective of the Project	Project contents	Reseources	Assignments attended	General Achievement
Physical			Humans	
Sucestions and recommendations for improvements modifications in the project			Project Modified Accordingly	

Implementation of Modified Project

FINAL EVALUATION

RECOMMENDATIONS

बोधगम्य प्रश्न

1. अनुसंधान के अर्थ व प्रकारों की विवेचना कीजिए?

2. व्यावहारिक अनुसंधान से क्या समझते है? इसके विभिन्न परिभाषाओं को स्पष्ट कीजिए?

3. क्रियात्मक अनुसंधान क्या है? कियात्मक अनुसंधान योजना के विभिन्न कारणों की व्याख्या कीजिए?

अध्याय–3

शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से प्राक्कल्पना दो शब्दों प्राक् + कल्पना के योग से बना है जिसका तात्पर्य चिन्तन है।

"A Hypothesis states that what we are looking for.....

A Hypothesis looks forward. It is proposition which can be put to a determine its validity. It may be some contrary to, our in accord with ,common sense. It may prove to be correct or incorrect. In any event, however, it leads to an empirical test."

W.J. Gooded, Paul K. Hutt

प्राक्कल्पना अनुसंधान को दिशा प्रदान करती है, क्योंकि वैज्ञानिक अनुसंधान तथा सर्वेक्षण प्रक्रिया का आधारभूत सोपान या चरण हैं। अध्ययन समस्या के चयन तथा स्पष्टीकरण के उपरान्त अनुसंधानकर्ता प्राक्कल्पना रूपी उत्पादन के माध्यम से समस्या रूपी महासागर के अन्तराल में प्रवेश करने में सक्षम एवं सफल होते है। इसका अभिप्राय यह है कि मुख्य अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व चिन्तन कर लेता है। इस प्रकार प्राक्कल्पना एक तीक्ष्ण अनुमान है जिसका प्रतिपादन एक अस्थायी स्वीकरण अवलोकित तथ्यों तथा दशाओं की व्याख्या करने तथा अनुसंधान को आगे मार्गदर्शन करने के लिये किया जाता है। अतः प्राक्कल्पना एक विचार, दशा, अथवा प्रस्ताव है, जिसे सम्भवतः मान किया जाता है ताकि उससे तार्किक परिणाम निकाला जा सके तथा ज्ञात अथवा निर्धारित किये जाने वाले तथ्यों की सहायता से विचार की सत्यता की जाँच की जा सकें।

प्राक्कल्पना के अभाव में अनुसंधान उपकेन्द्रित एवं अनुभावनात्मक अनिर्दिष्ट विवरण है। प्राक्कल्पना सिद्धान्त तथा अनुसंधान के बीच में एक आवश्यक कड़ी है जो ज्ञान की वृद्धि की खोज में सहायक होती है। इसे कार्य कारण प्राक्कल्पना भी कहते है। इसके अभाव में अनुसंधानकर्ता की समस्या के जटिल कारकों के विभेदीकरण करने में अत्यन्त कठिन परिश्रम तथा अत्यधिक समय व धन व्यय करना पड़ेगा।

प्राक्कल्पना के निर्माणभाव के कारण न तो कोई प्रयोग हो सकता है तथा न कोई वैज्ञानिक ढंग का अनुसंधान सम्भव हो सकता है।

अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राक्कल्पना अनुसंधान को दिशा प्रदान करती है।

प्राककल्पना के प्रकार (Types of Hypothesis)

गुडे तथा हाट्ट ने प्राक्कल्पनाओं को वर्गीकरण उनकी अमूर्तता के आधार पर किया है जो विशेष रूप से द्रष्टव्य है–

(1)अनुभवात्मक समानताओं के अस्तित्व को बतानें वाली प्राक्कल्पनाएँ :–

ये प्राक्कल्पनायें प्रायः सामान्य ज्ञान के प्रस्ताव या तर्क वाक्य का वैज्ञानिक परीक्षण प्रस्तुत करती है। उदाहरण स्वरूप गंजा व्यक्ति धनी होता है अथवा काना व्यक्ति शुभ होता है, जैसे–वक्तव्यों, किंवदन्तियों, वार्ताओं, विश्वासों की वैधता की परीक्षा गात्र अनुभवात्मक सर्वेक्षण के आधार पर ही की जा सकती है। वास्तव में ऐसे वक्तव्य ने केवल समाजशास्त्रीय जगत में ही परिख्यात हैं, प्रत्युत सभी विद्वानों में ऐसे सामान्य ज्ञान परिपूर्ण है, जिनमें वैज्ञानिक अध्ययन करने की आवश्यकता है। यह एक बार सर्वविदित था कि सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा नही करता है। परन्तु बहुत ही गहन अनुभवात्मक अध्ययन के उपरान्त यह सिद्ध किया गया है कि सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा नहीं करता प्रत्युत पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है।

(2) जटिल आदर्श प्रारूपों से सम्बंधित प्राक्कल्पनायें :–

इसके अन्तर्गत प्रायः एक सामान्य प्रस्ताव पर तर्क अथवा निष्कर्ष को पूर्वाधार मानकर अन्य तथ्यों की तर्कपूर्ण रूप से परीक्षा की जाती है। यह बहुधा परिस्थिति की दशाओं तथा अल्पसंख्यक समूहों के व्यवहारो के व्यावहारों से सम्बंधित होती है। यह प्राक्कल्पना तब तक प्राक्कल्पना रहेगी जब तक कि इसका निर्णायक परीक्षण नहीं कर लिया जाता। वास्तव में अधिक जटिल अनुसंधान के क्षेत्रों में पुनः अनुसंधान के कार्य के सन्दर्भ में उपकरणों तथा, समस्याओं को सूचित करना इस प्रकार की प्राक्कल्पनाओं के महत्वपूर्ण प्रकार्य है।

(3) विशेषणात्मक परितत्वों के सम्बन्ध से सम्बंधित प्राक्कल्पनायें :–

ये प्राक्कल्पनायें आदर्श प्रकार की सूक्ष्मता से आगे बढ़कर तर्कपूर्ण अर्न्तसम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करती है जबकि अनुभवात्मक समस्याओं से सम्बंधित प्राक्कल्पनायें सामान्य अन्तरों के अवलोकन का मार्गदर्शन करती है तथा वे जो आदर्श प्रारूपों से सम्बन्धित है, विशिष्ट समानताओं के अवलोकनों का मार्ग दर्शन करती है। विश्लेषणात्मक परित्ययों के अध्ययन के लिए एक गुण में परिवर्तन तथा दूसरे में परिवर्तनों के बीच मे सम्बन्धों के एकत्रीकरण की आवश्यकता होती है। अक्सर प्रयोगात्मक अनुसंधान में इसका अनुशीलन किया जाता है तथा किसी इकाई के एक अथवा अनेक परितत्वों में सह–सम्बन्ध का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता होता है।

सामान्यतः प्राक्कल्पनाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) शोध प्राक्कल्पना

(2) सांख्यिकीय प्राक्कल्पना

(1) शोध प्राक्कल्पना :–

इस प्राक्कल्पनाओं का आधार सम्प्रत्ययात्मक होता है। उनके द्वारा किन्ही निश्चित सम्प्रत्ययों के बीच सम्भावित सम्बन्धों के विषय में अनुमान लगाया जाता है। इन

प्राक्कल्पनाओं की परीक्षणीय बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उनका सांख्यिकीयकरण भाषा में अनुवाद किया जाये ताकि सम्प्रत्ययों अथवा गुणों व परितत्यों के अनुमानित अथवा के विषय में निश्चित रूप से जाना जा सके। वास्तव में शोध प्राक्कल्पना को परीक्षणीय बनाकर सांख्यिकीय प्राक्कल्पना में परिवर्तित किया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप, यह कहना कि स्त्रियों व पुरूषों की अपेक्षा अधिक धर्मनीय होती हैं, एक शोध प्राक्कल्पना होगी। यदि इसी बात को इस तरह से कहा जाय कि स्त्रियों में धर्मशीलता का माध्य पुरुषों की धर्मशीलता के माध्य से अधिक होगा तो यह शोध प्राक्कल्पना परीक्षणीय हो जायेगी। इस परीक्षणीय प्राक्कल्पना को सांख्यिकीय प्राक्कल्पना कहेगें।

(2) सांख्यिकीय प्राक्कल्पना :–

एक सांख्यिकीय प्राक्कल्पना शोध प्राक्कल्पना के किसी एक पक्ष को परिमाणात्मक व सांख्यिकीय शब्दों में व्यक्त करती है। जे.ए. जान के अनुसार एक ऐसी प्राक्कल्पना जिसका प्रतिपादन आशान्चित परिणामों की भविष्यवाणी कहने के लिये उस समय किया जाता है जबकि आदर्श प्रारूप के अपनायें जाने पर सांख्यिकीय विधियों की सभी प्राप्ति पर लागू किया जाता है, सांख्यिकीय प्राक्कल्पना कहलायेगी।

बोधगम्य प्रश्न

1. प्राक्कल्पना से क्या समझते है? इसके विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कीजिए?

2. शोध प्राककल्पना क्या है? शोध प्राक्कल्पना व सांख्यिकीय प्राककल्पना का तुलनात्मक परीक्षण कीजिए।

अध्याय–4

शोध–प्रारूप

Research Design

प्रत्येक सामाजिक शोध के कुछ निश्चित उद्देश्य होते है और उन उद्देश्यों की प्राप्ति तब तक नही हो सकती है जब तक कि योजनाबद्ध रूप से शोध कार्य का कार्य प्रारम्भ न किया जाये। शोध में इस प्रकार की रूपरेखा को शोध प्रारूप कहते है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि किसी शोध में जिस प्रकार की समस्या या उपकल्पना होगी उसी अनुरूप शोध प्रारूप का निर्माण किया जायेगा। सामाजिक शोध बिना किसी लक्ष्य के नही होता। लक्ष्य का निर्माण शोध कार्य के समय नही वरन् कार्य प्रारम्भ करने के पहले ही कर लिया जाता है। शोध के उद्देश्य के आधार पर अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने के लिए पहले से ही बनाई गयी योजना की रूपरेखा को शोध प्रारूप कहते है। शोध कार्यों के उद्देश्यों की विभिन्नता के कारण शोध प्रारूपों में भी भिन्नता पायी जाती है। कुछ शोध जिज्ञासा वश किये जाते है तो कुछ शोध ज्ञान प्राप्ति के लिए किये जाते है। कुछ का लक्ष्य परिकल्पना का निर्माण करना होता है तो कुछ शोध का उद्देश्य प्राप्त परिकल्पना की सत्यता की जाँच करना है। कुछ शोध लक्ष्य घटना का यथार्थ विवरण करना है तो कुछ का विभिन्न सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु विकल्पों का पता लगाना होता है। इन लक्ष्यों के आधार पर शोध प्रारूप में भिन्नता पायी जाती है।

शोध प्रारूप दो शब्दों से मिलकर बना है शोध एवं प्रारूप। शोध का तात्पर्य अस्पष्ट से तात्पर्य स्पष्ट ज्ञान का स्पष्टीकरण विधमान लक्ष्यों का सत्यापन और ज्ञान प्राप्ति के विस्तार से है। प्रारूप के सन्दर्भ में स्पष्ट किया है कि निर्णय निर्धारित करने की प्रक्रिया को प्रारूप कहते है। इस दृष्टिकोण से उद्देश्य प्राप्ति के पूर्व ही उद्देश्यों का निर्धारण करके शोध कार्य की जो रूपरेखा बना ली जाती है उसे शोध प्रारूप कहते है। जब शोध कार्य किसी सामाजिक शोध प्रारूप कहलाता है। अतः यह स्पष्ट है कि सामाजिक शोध में भिन्नता के कारण शोध प्रारूप में भी भिन्नता पायी जाती हैं। इस अवधारणा वश शोध प्रारूप अनेक प्रकार के हैं शोधकर्ता अपने अध्ययन के उद्देश्य के अनुरूप सर्वाधिक उपयुक्त समझकर किसी एक शोध प्रारूप का चयन कर लेता है। शोध प्रारूप के निर्धारण के साथ ही शोधकर्ता की प्रकृति लक्ष्य हो जाती है। यदि यह ज्ञात हो जाय कि शोध प्रारूप अन्वेषणात्मक है तो यह स्वतः ही निश्चित हो जायेगा कि किसी सामाजिक घटना से सम्बन्धित उक्त निहित कारणों की खोज करना है। अतः अपने उद्देश्यों की प्राप्ति अनुसार शोध प्रारूप मुख्यतः निम्न प्रकार के होते हैं–

1. अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप (Formulative Research Design)

2. वर्णानात्मक शोध प्रारूप (Descriptive Rescarch Design)

3. निदानात्मक शोध प्रारूप(Diagnostic Research Design)

4. परीक्षणात्मक शोध प्रारूप(Experimental Research Design)

शोध प्रारूप के महत्व :–

शोध प्रारूप किसी भी अध्ययन की रीढ़ की हड्डी है। बिना इसके अध्ययन विषय को व्यवहार में क्रियान्वित नही किया जा सकता है। अध्ययन प्रणाली में निश्चित क्रमबद्ध एवं पूर्वानुमानता लाने हेतु वैज्ञानिक प्रणाली के प्रयोग के रूप में शोध प्रारूप का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतया इसके निम्न महत्व हैं–

1. अध्ययन की आधारशिला :

शोध प्रारूप किसी अध्ययन विषय की आधारशिला है। इसके निर्धारण के उपरान्त ही विभिन्न क्रमवार क्रिया–कलाप कार्यान्वित किये जाते है।

2. अध्ययन विषय का चयन :

शोध प्रारूप अध्ययन के विषय वस्तु का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि शोधकर्ता के दृष्टिकोण से यह विषय व्यावहारिक है कि नही या दूसरे शब्दों में जिस विषय का हम चुनाव कर रहे है उसके विषय में उपलब्ध वैज्ञानिक विधियों की सहायता से अध्ययन करना सम्भव है अथवा नहीं। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि जिस विषय को अध्ययन विषय के लिये चुना गया है उसका विषय अधिक विस्तृत न हो जाये अथवा जो कुछ भी अध्ययन किया जाये वह इतना विवश हुआ हो कि उससे कोई यथार्थ निष्कर्ष ही नहीं निकल पाये। शोध प्रारूप निर्धारण के साथ अध्ययन विषय से सम्बंधित चेतना की स्थिति समाप्त हो जाती है।

3. परिकल्पनाओं का निर्माण :

शोध प्रारूप के निर्माण के उपरान्त ही परिकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है। शोध विषय के नाम से अनुरूप ही शोधकर्ता अपने विचार से ऐसा सिद्धान्त या निष्कर्ष बना होता है जिसके सम्बन्ध में यह विचार करता है कि सामान्यतः उनके अध्ययन के आधार पर सिद्ध हो सकता है किन्तु जब तक उन तत्वों की प्राप्तिकरण नहीं हो पाती है। उनकी सत्यता की स्थिति संदिग्ध बनी रहती है। परिकल्पना के निर्माण के साथ ही शोध प्रारूप अध्ययन वस्तु विषय क्षेत्र का निर्धारण कर देते है।

4. अध्ययन के श्रोतो का निर्धारण :

शोध प्रारूप के द्वारा ही अध्ययन के स्रोतो का निर्धारण किया जाता है। शोध प्रारूप अध्ययन विषय के निर्धारण के उपरान्त उस विषय से सम्बंधित विभिन्न स्रोतो का पता लगाया जाता है जिससे अध्ययन के विषय वस्तु के अनुरूप तथ्य संकलित किये जा सकें। तथ्यों के संकलन के लिए यह निश्चित करना होता है कि उन्हें किन तथ्यों या स्रोतो से विश्वसनीय सूचनायें प्राप्त हो सकेगी। अध्ययन के स्रोतो से केवल विधमान अवस्था का ही नहीं अपितु सामाजिक प्रक्रिया का उल्लेखनीय घटना का पता चलता है।

5. तथ्यों का संकलन :

श्रोतों के निर्धारण के उपरान्त शोध प्रारूप द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि विभिन्न श्रोतों से तथ्यों का संकलन किस प्रकार से किया जायेगा। तथ्यों में विश्वसनीयता लाने हेतु शोध प्रारूप व उसके अनुरूप ही तथ्यों का संकलन किया जाता है।

6. तथ्यों के वर्गीकरण एवं सारणीयन में सहायक :

शोध प्रारूप तथ्यों के वर्गीकरण विषय से सम्बद्ध अनेक पक्षो को स्पष्ट करता है, क्योंकि इसके द्वारा बिखरे हुए असम्बद्ध तथ्यों का ढेर कम ही नही हो जाता है अपितु निश्चित क्रम से निर्धारित हो जाने के उपरान्त वैज्ञानिक स्वरूप भी ग्रहण कर लेते है। तथ्यों के वर्गीकरण एवं सारणीयन के उपरान्त तथ्यों कें मध्य अन्तर सम्बद्धता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इसके द्वारा एक आम आदमी तथ्यों के संक्षिप्त स्वरूप को देखकर उसके प्रति एक जन धारणा लगा लेता है।

7. अध्ययन के क्षेत्र का निर्धारण :

अध्ययन के क्षेत्र का निर्धारण निर्धारित शोध प्रारूप के द्वारा ही किया जाता है। शोध प्रारूप के द्वारा ही अध्ययन क्षेत्र का निर्धारण इस प्रकार से किया जाता है कि उस क्षेत्र के अन्तर्गत विषय वस्तु का स्वरूप समाप्त हो अन्यथा व्यर्थ ही शोधकर्ता मृग मरीचिका में फसा रह जायेगा। उदाहरण–स्वरूप यदि वाराणसी क्षेत्र में एड्स के रोग से सम्बंन्धित शोध का अध्ययन करना चाहे तो इस क्षेत्र में निश्चित तथ्यों के न रहने से शोध कार्य पूरा नही हो सकेगा। इसके अतिरिक्त शोध प्रारूप निश्चित अन्य तत्वों के आधार पर ही अव्ययन क्षेत्र के स्वरूप का निर्धारण किया जाता है। ऐसा कदापि नही होना चाहिए कि शोधकर्ता की क्षमता के बाहर की वस्तु अध्ययन क्षेत्र हो जिसके कारण वह शोध कार्य पूरा ही न कर सकें।

8. अध्ययन के उद्देश्यों को निष्चित किया जाना :

अध्ययन के उद्देश्य को निश्चित किया जाना शोध प्रारूप का प्रमुख महत्व है। शोध प्रारूप के द्वारा ही यह निश्चित किया जाता है कि किन उद्देश्यों की पूर्ति शोध कार्य में किया जा रहा है। सामान्यतः शोध कार्य नये तथ्यों के परिमार्जन एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन हेतु या पर्यावरण में मानव कल्याण हेतु नये उपयोगी क्षेत्रों का पता लगाने हेतु शोध कार्य किया जाता है। अध्ययन के उद्देश्य का स्पष्टीकरण शोध प्रारूप द्वारा ही किया जाता है।

9. अध्ययन विषय पर होने वाले व्ययों का निर्धारण :

उद्देश्यों के अनुरूप अध्ययन विषय पर होने वाले व्ययों का निर्धारण किया जाता है। शोध प्रारूप के इस कार्य के फलस्वरूप शोधकर्ता को अपने शोध कार्य के सम्बन्ध में पहले ही सम्पूर्ण व्यय का पता चल जाता है। इस कारण वश शोध कार्य कभी मध्य मे व्ययों के कारण बढ़ न जाये।

10. उपकरण का निर्धारण :

किसी भी शोध कार्य में विभिन्न अनेक प्रकार के उपकरण की आवश्यकता होती है। उपकरणों के निर्धारण के शोध–प्रारूप का विशेष महत्व है। शोध प्रारूप के अनुरूप ही उपकरणों की उपयोगिता को निश्चित किया जाता है।

11. शोधकर्ताओं के चयन में सहायक :

अध्ययन विषय के प्रकृति के अनुरूप अध्ययनकर्ताओं एवं विस्तृत अध्ययन के लिए अध्ययनकर्ताओं के टीम का चयन शोध प्रारूप के अन्तर्गत ही किया जाता है। शोधकर्ता के अनुभव, सूचियों, मनोवृत्तियाँ, लक्ष्य इत्यादि प्रमुख कारक है। जो मुख्य रूप से शोध कार्य के स्वरूप को प्रभावित करते है।

शिक्षित युवकों में बेरोजगारी की समस्या से सम्बंधित शोध–प्रारूप

शोध प्रारूप अध्ययन विषय की रूप रेखा को प्रस्तुत करता है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी शोध में जिस प्रकार की समस्या या परिकल्पना होगी। इसी के अनुरूप शोध प्रारूप का निर्माण किया जायेगा। शिक्षित युवकों में बेरोजगारी की समस्या से सम्बंधित निम्न रूपों में शोध प्रारूप प्रस्तुत किया जायेगा।

सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य :

शोध प्रारूप तैयार करने में प्राथमिक चरणों में सर्वप्रथम यह कि उपयोगिता, उद्देश्य इत्यादि को निर्धारित किया जाता है। इस चरण में सर्वप्रथम यह देखा जाता है कि इस क्षेत्र में शोध कार्य कहा तक किया गया है यदि किया भी गया है तो उसमे क्या–क्या त्रुटियों है। क्योंकि त्रुटियों के कारण ही आवश्यकता की उत्पत्ति होती है और आवश्यकता ही शोधकार्य की जननी है। शिक्षित युवकों में बेरोजगारी के सम्बन्ध में सर्वप्रथम इस विषय पर सम्बन्धित शोधों का अध्ययन किया जायेगा। देश में वर्तमान समय में सबसे प्रमुख समस्या के कारण शिक्षित युवको में बेरोजगारी की समस्या नित नये शोधों की आवश्यकता है।

बोधगम्य प्रश्न :–

1. शोध प्रारूप किसे कहते है? इसके प्रकारों को स्पष्ट कीजिए?

2. शोध प्रारूप के महत्व की विस्तृत व्याख्या कीजिए?

3. शोध प्रारूप शिक्षित युवको में बेरोजगारी की समस्या से किस प्रकार सम्बन्धित है?

अध्याय–5

(TYPE OF RESEARCH DESIGN)

प्रत्येक सामाजिक शोध के कुछ निश्चित उद्देश्यों होते है उन उद्देश्यों की प्राप्ति तब तक नही हो सकती जब तक योजनाबद्ध रूप में शोध कार्य का आरम्भ नही किया गया है। इसी योजना की रूपरेखा को शोध प्रारूप कहते है इसका तात्पर्य यही हुआ कि एक सामाजिक शोध की समस्या या उपकल्पना जिस प्रकार की होगी, उसी के अनुसार शोध प्ररचना का निर्माण किया जाता है जिससे कि शोध कार्य को एक निश्चित दिशा प्राप्त हो सके और शोधकर्ता इधर–उधर भटकने से बच जाये।

MEANING OF RESEARCH DESIGN :

सामाजिक शोध बिना लक्ष्य या उद्देश्य के नही होता है। इस उद्देश्य का विकास और स्पष्टीकरण शोध के दौरान नही होता अपितु वास्तविक अध्ययन आरम्भ होने से पूर्व ही इसका निर्धारण कर लिया जाता है। शोध के उद्देश्य के आधार पर अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने के लिये पहले से ही बनायी गयी योजना की रूप रेखा को शोध प्रारूप कहते है।

ने प्ररचना का अर्थ समझाते हुए लिखा है कि निर्णय क्रियान्वित करने की स्थिति में आने से पूर्व ही निर्णय निर्धारित करने की प्रक्रिया को प्ररचना कहते है।

अतः हम यह कह सकते है कि शोध कार्य के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उसे एक निश्चित प्रकार के अन्तर्गत लाने के लिये तथा शोध कार्य में उपस्थित होने वाली स्थितियों का सफलतापूर्वक सामना करने के लिये शोध की जो रूप रेखा बनायी जाती है उसी को हम शोध प्ररचना कहते है।

TYPES OF RESEARCH DESIGN :

समस्त शोधों का आधारभूत उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति है। पर इस उद्देश्य की पूर्ति विभिन्न प्रकार से हो सकती है और उसी के अनुसार शोध प्ररचना का रूप भी अलग–अलग हो सकता है। शोध प्ररचना निम्न चार प्रकार की होती है–

1. अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध प्रारूप
2. वर्णनात्मक शोध प्रारूप
3. निर्देशात्मक शोध प्रारूप
4. प्रयोगात्मक या परीक्षणात्मक शोध प्रारूप

1– अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध प्रारूप :

जब किसी शोध कर्य का उद्देश किन्ही सामाजिक घटना में आन्तर्निहित कारणों को ढूढ़ निकालना होता है तो उससे सम्बद्ध रूप रेखा को अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप कहते हैं। इस प्रकार शोध प्रारूप में शोध कार्य की रूप रेखा इस ढ़ंग से प्रस्तुत की जाती है। इस प्रकार शोध प्रारूप में घटना की प्रकृति तथा धारा प्रवाहों की वास्तविकताओं की खोज की जा सकें। समस्या या विषय के चुनाव के पश्चात् प्राक्कलपना को सफलतापूर्वक निर्माण करने के लिये इस प्रकार के प्रारूप का बहुत महत्व है। क्योंकि इसकी सहायता से हमारे लिये विषय का कार्य कारण सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। मान लीजिये कि हमे किसी विशेष परिस्थिति में तनाव प्राप्त व्यक्तियों में व्याप्त यौन व्याभिचार के विषय में अध्ययन करना है तो उसके लिये सबसे पहले उन कारको का ज्ञान आवश्यक है जो कि इस प्रकार के व्यभिचार को उत्पन्न करते हैं अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप इन्ही कारको को खोज निकालने की एक योजना बन सकती है। इस प्रकार कभी–कभी समस्या के चुनाव व शोध कार्य के लिये उसकी उपयुक्तता के सम्बन्ध में हमें अन्य किसी श्रोत से कुछ ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता है। उस अवस्था में अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप की सहायता से हमें पर्याप्त सहायता मिल सकती है।

इस प्रकार की शोध–प्रारूप की सफलता के लिए कुछ अनिवार्यताओं का पालन करना होता है।

(अ) सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन :–

सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन इस दिशा में प्रथम अनिवार्यता है, क्योंकि इसके बिना विषय के सम्बन्ध में कोई भी आरम्भिक ज्ञान हमें प्राप्त नही हो सकता। बिना किसी सैद्धान्तिक आधार के शोधकार्य में अग्रसर होना अन्धकार में निशाना दागने के समान होगा। अतः सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन कार्य विषय की प्रवृत्ति के बारे में सामान्य ज्ञान प्राप्त करना अतयन्त लाभकारी सिद्ध होता है।

(ब) अनुभव सर्वेक्षण :–

इस दिशा में दूसरी आवश्यकता है। हमारे लिये यह भी आवश्यक हो जाता है कि हम सब व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करें जिनके विषय में हमें यह सूचना मिले कि शोध विषय के सम्बन्ध में उनको पर्याप्त अनुभव या ज्ञान है, पर अशिक्षा, अवसर का अभाव या अन्य किसी कारण से अपने अनुभव ज्ञान को लिखित रूप नही दे सके है। ऐसे लोगो का व्यावहारिक अनुभव हमारे लिये पथ प्रदर्शक का कार्य कर सकता है। अतः इनसे लाभ न उठाने की विलासता एक शोधकर्ता कदापि नही कर सकता इसलिए सूचनादाताओं से चुनाव इस ढंग से करना चाहिए कि विषय अथवा समरूप के सन्दर्भ में अनुभव व ज्ञान रखने वाले सम्भावित व्यक्ति उस चुनाव में आ जायें चाहें वे समस्या के क्षेत्र में कार्य करने वाले उत्तरदायी अधिकारी हो या कर्मचारी अथवा समस्या को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने वाले आलोचकों या समर्थक हो ऐसा करना से ही विषय के कारणों की खोज वास्तविक रूप से हो सकेगी।

(स) अर्न्तदृष्टि प्रेरक घटनाओं का विश्लेषण :–

यह अन्वेषण शोध प्रारूप का तीसरा आवश्यक तत्व है। इसका तात्पर्य यह है कि अध्ययन वस्तु के सम्बन्ध में व्यावहारिक दृष्टि पनप सकती है। इस प्रकार अर्न्तदृष्टि प्राक्कल्पना के निर्माण में तथा वास्तविक शोध कार्य में अत्यधिक सहायता मिलती है। प्रत्येक समुदाय या समूह के जीवन में कुछ दृष्टि आकर्षक, कुछ अत्यन्त सरल व स्पष्ट, कुछ व्याधिकीय, कुछ व्यक्तिगत, विशिष्ट युवा सम्बंधित घटना होती है जो अन्तर्दृष्टि को प्रोत्साहित करने में सहायक होती है।

अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के मुख्यकार्य :

(अ) पूर्व निधार्रित प्राक्कल्पना का तात्कालिक स्थितियों के सम्बन्ध परीक्षण करना।

(ब) विभिन्न शोध पद्धतियों के प्रयोग की सम्भावनाओं का स्पष्टीकरण करना।

(स) सामाजिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण समस्याओं की ओर शोधकर्ता का ध्यान आकर्षित करना।

(द) विस्तृत शोध कार्य के लिए अपरिचित क्षेत्र मे व्यवस्थित प्रावकल्पना का आधार प्राप्त करना।

(य) शोधकर्ता को एक विश्वसनीय रूप में प्रारम्भ करनें में सहायता करना।

(र) विज्ञान की सीमाओं में विस्तार करके उसके क्षेत्र का विकास करना।

(ल) अधिक महत्वपूर्ण विषयों पर ध्यान केन्द्रित करने के लिये शोधकर्ता को प्रेरित करना।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप उन आधारों को प्रस्तुत करता है जो कि एक सफल शोध कार्य के लिये महत्वपूर्ण होते है। श्री रेपटिज एवं उनके साथियों ने लिखा है कि ''अन्वेषणात्मक अनुसंधान के हेतु सम्बद्ध प्राक्कल्पना के निरूपण में सहायक होगा।''

2. वर्णानात्मक शोध प्रारूप :

विषय या समस्या के सन्दर्भ में वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करना शोध प्रारूप का मुख्य उद्देश्य है। इसके लिए यह आवश्यक होता है कि विषय के सन्दर्भ में हमें यथार्थ तथा पूर्ण सूचनायें प्राप्त हो क्योंकि इसके बिना अध्ययन विषय या समस्या के सम्बन्ध में हम जो कुछ भी वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करेगें वह वैज्ञानिक न होकर केवल दार्शनिक ही होगा वैज्ञानिक वर्णन का आधार वास्तविक व विश्वसनीय तथ्य ही है। अब यदि हमें किसी समुदाय की जातीय संरचना का शिक्षा स्वर, आवास अवस्था, आदिम समूह, परिवार के प्रकार आदि का वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करना है तो हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम इससे सम्बद्ध वास्तविक तथ्यों को किसी एक या एकाधिक वैज्ञानिक पद्वति के द्वारा एकत्रित करें। इसके लिये यह आवश्यक है कि अपने उद्देश्य को

सामने रखते हुए एक शोध प्रारूप को विकसित किया जाय। जिस शोध प्रारूप का उद्देश्य वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। उसे वर्णनात्मक शोध प्रारूप कहते है।

इस प्रकार के शोध प्रारूप में तथ्यों का संकलन किसी भी वैज्ञानिक प्रविधि द्वारा किया जा सकता है। प्रायः साक्षात्कार, अनुसूची प्रश्नावली, प्रत्यक्ष निरीक्षण, सहभागी निरीक्षण, सामुदायिक रिकार्ड का विश्लेषण आदि प्रविधियों का वर्णनात्मक शोध प्रारूप में सम्मिलित किया गया है।

वर्णनात्मक शोध प्रारूप में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाता है–

(अ) सर्वप्रथम उस अध्ययन विषय के चुनाव में सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। क्योंकि शोध का विषय इस प्रकार होना चाहिए जिससे सम्बद्ध आवश्यक व निर्भर योग्य तथा हमें प्राप्त हो सके। वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने की प्रथम शर्त यही है।

(ब) दूसरी बात यह है कि इन तथ्यों को जिन प्रविधियों के द्वारा सबसे उपयुक्त रूप में संकलित किया जा सके, उसका चुनाव भी खूब सावधानी से होना चाहिए। किसी भी शोध कार्य की यथार्थता प्रविधियों के उचित चुनाव पर निर्भर करती है। वर्णनात्मक शोधों में इस प्रकार के चुनाव का और भी महत्व इस कारण है। यदि चुनाव ठीक ढंग से नहीं किया गया तो शोध कार्य में वैज्ञानिक पनपने के स्थान पर उसमें दार्शनिक तत्वों का अधिक प्रवेश हो जायेगा ।

(स) मिथ्या झुकाव आदि से सुरक्षा इस दिशा में तीसरी ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात है। चूँकि इस प्रकार के शोध में विषय के वर्णनात्मक पक्ष पर बल दिया जाता है। अतः पक्षपात, मिथ्या झुकाव, पूर्व धारणा आदि के वर्णनात्मक विवरण में प्रवेश कर पाने की सम्भावना अधिक रहती है। अपने वर्णन को अधिक रोचक तथा आकर्षक बनाने का लोभ सम्भालना प्रायः बहुत कठिन होता है और शोधकर्ता के वर्णन में अतिशयोक्ति या अतिरंजना का पुट सरलता से देखने को मिलता है। अतः हर प्रकार की स्थिति की आवश्यकता है।

(द) विशिष्ट व आवश्यक तथ्यों के सम्बन्ध में भी अति संतुलित दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता है। वर्णनात्मक विवरण को एक साधारण रूप प्रदान करने के लिये प्रायः शोधकर्ता अपना ध्यान आकर्षण विशिष्ट तथ्यों पर अधिक केन्द्रित कर सकते है, पर यह प्रवृत्ति वैज्ञानिक प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

अन्त में शोध के व्यय में मितव्ययिता करने की भी आवश्यकता होती है। वर्णनात्मक शोध कार्य प्रायः विस्तृत होते है अतः यह जरूरी है कि शोध विषय को सिमित किया जाय। आवश्यक पदों पर न तो श्रम और न तो धन को बर्बाद करना उचित होता है।

वर्णनात्मक शोध के चरण :–

(क) शोध के उद्देश्य का निरूपण :–

शोध के उद्देश्यों का निरूपण शोध का प्रथम चरण होता है जिसके अन्तर्गत शोध से सम्बद्ध मौलिक प्रश्नों का स्पष्टीकरण तथा लक्ष्यों को परिसम्बंधित करना सम्मिलित होता

है, जिसमें कि अनावश्यक व असम्बद्ध तथ्यों का संकलन न हो तथा श्रम व धन की बर्बादी से बचा जा सके।

(ख) उद्देश्यों का स्पष्ट करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि तथ्य संकलन प्रविधि का चुनाव :–

तथ्य संकलन प्रविधि का चुनाव उचित ढंग से कर लिया जाय क्योंकि यह चुनाव ठीक से किये बिना विषय से सम्बद्ध निर्भर योग्य तथ्यों आकड़ों आदि पद्धतियों के अपने–अपने गुण होते है। समस्या के उद्देश्यों के अनुसार हम कितनी उपयुक्त पद्धति का चुनाव करने में सफल होते है। इस बात पर सम्पूर्ण शोध की सफलता पर निर्भर करती हैं।

(ग) निदर्शनों का चुनाव :–

निदर्शन का चुनाव इस दिशा मे तीसरा आवश्यक चरण है क्योंकि समूह के प्रत्येक सदस्य विषय की प्रत्येक इकाई का अध्ययन करना भी कठिन है। अतः निदर्शन का चुनाव अर्थात् सम्पूर्ण जनसंख्या के कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का चयन महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। क्योंकि इस प्रकार के अध्ययन के आधार पर सम्पूर्ण जनसंख्या के विषय में विश्वसनीय निष्कर्ष निकाला जा सकता हैं।

(घ) आंकड़ों का संकलन तथा उसकी जाँच :–

आंकड़ों का संकलन तथा उनकी जांच इस अध्ययन में चौथा चरण है। निदर्शन के चुनाव के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि वैज्ञानिक प्रविधियों की सहायता के आंकड़ों का केवल संकलन किया जाये अपितु उनकी जाँच भी उचित ढ़ंग से हो ताकि वर्णनात्मक विवरण में अनावश्यक बातों का समावेश न हो सके। वास्तविकता यह है कि साक्षात्कारकर्ता अथवा परीक्षणकर्ता की ईमानदारी पर शुद्ध तथा यथार्थ सूचनाएं एकत्रित की जा सकती है। अतः सामायिक संकलन के समय भी कार्यकताओं पर नियमित रूप से निगरानी रखता है।

(ङ) परिणामों का विश्लेषण :–

परिणामों का विश्लेषण भी इस दिशा में पंचम चरण है और इसका अर्थ भी जिन आकड़ों अथवा तथ्यों का संकलन किया गया है उनकी समानता या भिन्नता के आधार पर विभिन्न समूहों में वर्गीकरण, सारणीयन तथा अन्य सांख्यिकीय विवेचना शुद्धता तथा परीक्षण इस कार्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है। अतः इस स्थान पर अत्यन्त निगरानी रखने की आवश्यकता है।

(च) प्रतिवेदन का प्रस्तुतीकरण :–

इसमें शोध विषय के सम्बन्ध में तथ्य युक्त विवरण तथा सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है। इस स्तर पर भाषा के प्रयोग पर विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। क्योंकि अत्यधिक अलंकार युक्त भाषा से विषय के विवरण में अतिरंजना पनप सकती है और उसका विभिन्न लोगों के द्वारा विभिन्न अर्थ लगाये जाने का डर रहता है। इन समस्त

चरणों से सफलतापूर्वक गुजरने के पश्चात् ही वर्णनात्मक शोध कार्य अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है।

3. निदानात्मक शोध प्रारूप :–

शोधकार्य का मूलभूत उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति तथा ज्ञान की वृद्धि हैः–

पर यह भी हो सकता है कि शोध कार्य का उद्देश्य किसी समस्या के कारणों के सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके उस समस्या समाधानों को भी प्रस्तुत करना हो। इस प्रकार के शोध प्रारूप को निदानात्मक शोध प्रारूप कहते हैं अर्थात् विशिष्ट सामाजिक समस्या की खोज करने वाले शोध कार्य को निदानात्मक शोध कार्य कहते है। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट रूप से स्मरणीय है कि इस प्रकार के शोध में शोधकर्ता समस्या का हल प्रस्तुत करता है न कि स्वयं उस समस्या को हल करने के प्रयास में जुट जाता है। समस्या को हल करना समाज सुधारक, प्रशासक तथा नेताओं का काम होता है। शोधकर्ता केवल वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा समस्या के कारणों को जान लेने के बाद उसका उचित समाधान किस ढंग से सर्वोत्तम रूप में हो सकता है। इस बात की खोज करता हैं इसलिए निदानात्मक शोध कार्य में समस्या का पूर्व एवं विस्तृत अध्ययन करके समस्या के प्रति गहराई में जानने का प्रयास किया जाता है जिससे कि समस्या के प्रति सम्मावित कारणों का पता ठीक ढंग से लगाया जा सके। इस प्रकार समस्या के कारण सर्वप्रथम ज्ञान सर्वप्रथम है। उसके निदान की खोज उसके बाद की जाती है। इस प्रकार की खोज इस कारण की जाती है कि समस्या विशेष का हल तत्काल ही करने की आवश्यकता होती है। सम्भावित हल हो ध्यान में रखते हुए इसके लिए प्राक्कल्पना का निर्माण किया जाता है, जिससे कि अध्ययन कार्य वैज्ञानिक ढ़ंग से किया जा सके।

विशेषताएं :–

1. निदानात्मक शोध कार्य वैज्ञानिक पद्धति का निश्चित रूप से अनुसरण करता है, जिसका प्रथम चरण प्राक्कल्पना निर्माण और उसी आधार पर अध्ययन का संचालन है।

2. निदानात्मक शोध कार्य की आवश्यकता सामाजिक व्यवस्था सामाजिक सम्बन्धों से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं को तत्काल दूर करने या उपचार की खोज में सम्बद्ध होती है।

3. निदानात्मक शोध में सर्वप्रथम वैज्ञानिक ढंग से समस्या के कारणों का सही रूप में पता लगाने का कार्य किया जाता है, क्योकि यह माना जाता है कि वास्तविक कारणों से सम्बन्ध में उचित व पर्याप्त ज्ञान के बिना आवश्यक समाधान की खोज आवश्यक है।

4. निदानात्मक शोध विशिष्ट सामाजिक समस्या के निदान की खोज से सम्बद्ध होता है अर्थात केवल शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति करना इसका उद्देश्य नही, बल्कि उसके हल को ढूंढ़ना इसका काम होता है।

5. निदानात्मक शोधकर्ता समस्या के समाधान को ढूंढ़ता अवश्य है पर उस समस्या को हल करना उसका काम नही होता। वह तो वैज्ञानिक तौर पर केवल रास्ता बना देता है, उस रास्ते पर चलकर समस्या सुलझाना समाज सुधारक, प्रशासक आदि का काम होता है।

उपर्युक्त विवेचना से वर्णनात्मक तथा निदानात्मक शोध मे अन्तर स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है जो कि निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त है :–

(अ) वर्णनात्मक शोध का सम्बन्ध समस्या या विषय जिस रूप मे है, उसी में होता है जबकि निदानात्मक शोध का सम्बन्ध किसी सामाजिक समस्या से ही होता है। इस अर्थ में निदानात्मक शोध केवल समस्याओं का ही अध्ययन करता है जबकि वर्णनात्मक शोध किसी भी सामाजिक घटना का जिसमें सामाजिक समस्या भी आ जाती है, अध्ययन करता है।

(ब) वर्णनात्मक शोध में घटना के कारणों को तथ्य युक्त प्रस्तुत करने के हेतु ढूंढा जाता है, पर निदानात्मक शोध में समाधान ढूंढने के उद्देश्य से कारणों को जानने का प्रयत्न किया जाता है।

(स) वर्णनात्मक शोध में विषय का अध्ययन कर ज्ञान की प्राप्ति स्वयं साध्य है जबकि निदानात्मक शोध में ज्ञान की प्राप्ति उपचार ढूंढने का एक साधन बन जाता है।

4. प्रयोगात्मक या परीक्षाणात्मक शोध प्रारूप :–

भौतिक विज्ञानों की भांति समाजशास्त्र भी अपने शोध कार्यों में परीक्षण स्थली का उपयोग कर अधिकाधिक यथार्थता लाने का प्रयास कर रहा है। भौतिक विज्ञानों में जिस भांति कुछ निश्चित नियंत्रित अवस्थाओं में रखकर विषय का अध्ययन किया जाता है उसी प्रकार नियंत्रित दशाओं में रखकर निरीक्षण–परीक्षण के द्वारा सामाजिक घटनाओं का व्यवस्थित अध्ययन करने की रूपरेखा को प्रयोगात्मक या परीक्षणात्मक शोध प्रारूप कहते हैं।

श्री चौंपिन ने लिखा है कि समाजशास्त्रीय शोध में परीक्षात्मक प्रारूप की अवधारणा नियंत्रण की दवाओं के अन्तर्गत परीक्षण द्वारा मानवीय सम्बन्धों के व्यवस्थित अध्ययन की ओर संकेत करती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रयोगात्मक पद्धति के द्वारा विषय का अध्ययन परीक्षणात्मक शोध का दूसरा नाम है।

परीक्षणात्मक शोध तीन प्रकार के होते है :–

(क) पश्चात् परीक्षण

(ख) पूर्वपश्चात् परीक्षण, और

(ग) कायान्तर तथ्य परीक्षण।

पश्चात् परीक्षण :–

इसके अन्तर्गत सभी दृष्टि से प्रायः समान विशेषताओं व प्रकृति वाले समूहों को चुन लिया जाता है जिनमें से एक समूह नियंत्रित समूह में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं लाया

जा सकता है, जबकि परीक्षणात्मक समूह में किसी एक कारक द्वारा परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है इस प्रकार प्रथम समूह द्वितीय समूह से भिन्न हो जाता है तो उसी कारक को उस परिवर्तन का कारक मान लिया जाता है। जैसे– दो समान समूहों में एक समूह में जिसे परीक्षणात्मक समूह माना जाता है सह–शिक्षा का प्रसार किया जाये कुछ समय के पश्चात् उस समूह की तुलना दूसरे से की जाए यदि दोनों में कुछ अन्तर (जैसे– प्रेम विवाह की अधिक घटनाएं) अधिक देखने को मिलती है तो वह सह शिक्षा के कारण समझा जाएगा।

पूर्व–पश्चात् परीक्षण :–

इसके अन्तर्गत अध्ययन के लिए केवल एक ही समूह का चुनाव किया जाता है और उसी का अध्ययन अथवा अवस्था विशेष के पहले और बाद को किया जाता है। इन दोनों अध्ययनों के अन्तर को देखा जाता है और उसे परिवर्तित परिस्थितियों का परिणाम मान लिया जाता है, जैसे– संयुक्त परिवार प्रणाली का अध्ययन औद्योगिकरण के पूर्ण और औद्योगिकरण के पश्चात् किया जाता है और यदि इन दोनों की अध्ययन तुलना से यह पता चले कि औद्योगिकरण के पूर्व संयुक्त परिवार संगठित अवस्था में था जबकि औद्योगिकरण के पश्चात् उसमें विघटन की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी तो संयुक्त परिवार विघटन की प्रक्रिया को औद्योगिकरण का परिणाम मान लिया जायेगा।

कार्यान्तर तथ्य परीक्षण :–

इस प्रकार की परीक्षा ऐतिहासिक घटना का अध्ययन करने के लिये था पर ऐतिहासिक घटनाओं को दोहराना शोधकर्ता के वर्ष में नहीं होता । अतः जब वो समूहों का चुनाव करता है जिसमें से एक वह घटना जिसका अध्ययन उसे करता है, घटित हो चुकी है जबकि दूसरे में वही इन दोनों समूहों की पुरानी परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन करके यह पता लगाने का प्रयत्न किया जाता है कि जिस समूह में यह घटना घटित हुयी है, वह किन कारणों से हुई है। संक्षेप में ऐतिहासिक घटना चक्रों का परीक्षण कर वर्तमान घटनाओं या उन अवस्थाओं के कारणों की खोज कार्यान्तर तथ्य परीक्षण कहलाता है।

बोधगम्य प्रश्न :–

1. अन्वेषणातमक शोध प्रारूप के अका को स्पष्ट कीजिए एवं इसके मुख्य कार्यो की विवेचना कीजिए?

2. वर्णात्मक शोध प्रारूप क्या है? इसके विभिन्न चरणों की विवेचना कीजिये?

3. परीक्षणात्मक शोध प्रारूप से क्या समझते है? पश्चात् परीक्षण, पूर्व– पश्चात् परीक्षण एवं कायान्तर तथ्य परीक्षण का तुलनात्मक परीक्षण कीजिए?

अध्याय – 6

तथ्य संकलन की विभिन्न विधियाँ

(TYPE OF DATA COLLECTION)

किसी भी सर्वेक्षण शोध या अनुसन्धान के लिए सामग्री या तथ्यों या आकड़ों का संकलन अत्यन्त आवश्यक है। जब तक शोध विषय से सम्बंधित तथ्यों के निश्चित प्रविधियों को काम में लेते है, एकत्रित नहीं किया जायेगा तब तक शोध के आधार पर कोई निष्कर्ष नही निकाले जा सकते है और न ही किसी प्रकार के नियमों का प्रतिपादन किया जाता है। तथ्य संकलन शोध प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण चरण है, जिस प्रकार ईट चूना पत्थर सीमेण्ट बजरी, लकड़ी लोहे आदि के बिना किसी भवन का निर्माण नहीं किया जा सकता, ठीक उसी प्रकार तथ्यों के बिना शोध कार्य सम्पन्न नहीं किया जा सकता। किसी भी वैज्ञानिक निष्कर्ष तक पहुंचने एवं सामान्यीकरण तथा सैद्धान्तिकरण के लिए सूचनाये प्रदान करता है उदाहरण के रूप में यदि हम यह ज्ञात करना चाहते है कि किसी क्षेत्र विशेष के बालकों मे अपराधी प्रवृति अधिक पायी जाती है बजाय किसी अन्य क्षेत्रकर्ता ऐसी दशा में दोनों क्षेत्रों के बालकों को वहा की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक परिस्थितियों का अध्ययन करना होगा, रहन–सहन की स्थिति आजीविका के साधन बालकों के समाजीकरण की प्रक्रिया आदि के बारे में गहन जानकारी प्राप्त करनी होगी। इसी जानकारी या एकत्रित सूचनाओं, आकड़ों आदि के आधार पर शोध कार्य को आगे बढ़ाया जा सकता है, कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकेगे, सामान्यीकरण किया जा सकेगा। वे सब सूचनायें आकड़ें, जानकारी आदि तथ्यों के अन्तर्गत आते हैं।

वैज्ञानिक शोध के लिए इन तथ्यों का विश्वसनीय होना भी आवश्यक है और इस विश्वविद्यालय को बनाये रखने के लिये शोधकर्ता वस्तुनिष्ठता के साथ तथ्यों को एकत्रित करता हैं। स्पष्ट है कि शोध या अनुसंधान के लिये विश्वसनीय तथ्यों या सामाग्री का होना नितान्त आवश्यक हैं।

तथ्य संकलन का अर्थ :–

अमेरिकी कालेज शब्द कोष में तथ्यों का अर्थ स्पष्ट करने की दृष्टि से बताया गया है कि जो वास्तव में घटित हुयी है, जो कुछ घटा में रखनी है कि भौतिक घटनाओं की मूर्त घटनायें पक्ष की सामाजिक विज्ञानों से तथ्य नहीं देती, बल्कि अपूर्व बातें, जैसे– विश्वास, मनोवृत्तियों या विचार आदि भी तथ्यों के अर्न्तगत आते है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तथ्य का तात्पर्य ऐसी सभी सूचनायें सामाग्री व आँकड़ों से है जो कि क्षेत्रीय कार्य और द्वैतीयक श्रोत के माध्यम से प्राप्त किये जाते हैं।

तथ्यों का स्रोत :–

तथ्यों के श्रोतों का तात्पर्य यह है कि ऑकड़ों का संकलन किन श्रोतों या घटनाओं से किया जा रहा हैं ऑकड़ों के श्रोतों के चुनाव में विशेष की सावधानी आवश्यकता है। यदि

ये श्रोत विश्वसनीय नही हुए तो सम्पूर्ण शोध कार्य ही निरर्थक साबित हो सकता है। प्रमुखतः तीन तरीकों से अध्ययन हेतु तथ्य एकत्रित किये जा सकते हैं–

(1) हम व्यक्ति से स्वयं बात चीत करें, वार्तालाप करें, सीधे प्रश्न करे तथा विषय या समस्या के सम्बन्ध में उनके विचार या प्रतिक्रिया को जान लें।

(2) शोध विषय से सम्बन्धित व्यक्ति समूह एवं संगठन के क्रिया–कलापों, उपचार व्यवहारों का प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन करें और इस अवलोकन के आधार पर प्राप्त तथ्यों को संकलित कर लें।

(3) शोध कार्य के समय उन दस्तावेजों, तथ्यों या सामग्री का प्रयोग अपनी आवश्यकतानुसार करें जो किसी अन्य अध्ययन या शोध हेतु एकत्रित किये गये थे।

तथ्य संकलन के उपर्युक्त तीन श्रोतों को विद्वानों ने प्रमुखतः दो भागों में बॉटा है, जो इस प्रकार है–

(1) प्राथमिक स्त्रोत :–

प्राथमिक **स्त्रो**तों से प्राप्त तथ्य वे मौलिक तथ्य होते है जिनको संकलित व प्रचारित करने का दायित्व उसी व्यक्ति या शोधकर्ता का होता है जिनसे उन्हें एकत्रित किया हैं। यहा हमें यह बात भली–भांति समझ लेना चाहिए कि प्राथमिक श्रोत से एकत्रित सामग्री का संकलनकर्ता रिपोर्ट या प्रतिवेदन को लेखक हो यह आवश्यक नहीं है।

श्रीमती यंग ने लिखा है ''माध्यमिक स्त्रोत वे स्त्रोत है जो प्राथमिक स्तर पर तथ्यों के संकलन में सहायक होते है।''

प्राथमिक स्त्रोतो को अन्य शब्दों में हम इस प्रकार समझ सकते है जहा शोधकर्ता स्वयं अध्ययन क्षेत्र या समग्र की अध्ययन ईकाइयों से सम्पर्क कर तथ्यों को एकत्रित करता है, वहा इसे तथ्य संकलन का स्रोत कहा जाता है। पी.वी. यंग ने तथ्य संकलन के प्राथमिक स्रोत को दो भागों में विभाजित किया है प्रथम प्रत्यक्ष स्रोत में शोधकर्ता अध्ययन इकाइयों से सीधा सम्पर्क किये बिना ही सामग्री का संकलन करता है । अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत में प्रश्नावली रेडियों या टेलीविजन, टेलीफोन, साक्षात्कार प्रतिनिधि प्रविधियों, आदि प्रमुख है। यहां इन माध्यमों से सामाग्री एकत्रित की जाती हैं।

यहां प्राथमिक स्रोत के तथ्य संकलन के प्राथमिक स्त्रोत के अर्न्तगत हम अवलोकन साक्षात्कार अनुसूची एवं प्रश्नावली पर विचार करेगें।

अवलोकन :–

अवलोकन तथ्य संकलन के प्राथमिक स्रोत के अर्न्तगत आता है। इसमें अध्ययनकर्ता स्वयं अध्ययन स्थल पर पहुँच कर घटनाओं, दशाओं वस्तुओं रीतिरिवाजों एवं व्यवहारों को निष्पक्ष रूप से देखता है। तटस्थ होकर उनका अवलोकन करता है और इस आधार पर तथ्यों को एकत्रित करता है। इस प्रविधि का सफल प्रयोग सीमित क्षेत्र में ही किया जा सकता है।

साक्षात्कार :–

इसमें अध्ययन विषय से सम्बंधित विभिन्न व्यक्तियों से सीधा सम्पर्क स्थापित कर बातचीत की जाती है, वार्तालाप किया जाता है। अध्ययन हेतु आवश्यक सामाग्री एकत्रित की जाती है, इस विधि को साक्षात्कार विधि के नाम से पुकारते हैं। इसमे अनुसंधानकर्ता अनुसूची या साक्षात्कार प्रदर्शिका की सहायता से सकता है। वह चाहे तो मुक्त बात लक्ष्य के माध्यम से भी तथ्य संकलित कर सकता है।

अनुसूची :–

अनुसूची प्रश्नों की एक सूची होती है जिस अनुसंधानकर्ता स्वयं या उसके प्रगणक क्षेत्र में जाकर सूचनादाताओं से प्रश्न पूछ कर उत्तरों को भरते है।। इस विधि में अनुसंधानकर्ता तथा सूचनादाताओं के बीच अनुसूची के माध्यम से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित हो जाता है इस विधि की सहायता से अशिक्षित व्यक्तियों से भी सूचनायें सुगमता से प्राप्त कर ली जाती है।

प्रश्नावली :–

यद्यपि प्रश्नावली की सहायता से प्राथमिक तथ्य संकलित किये जाते है परन्तु फिर भी यह सूचना प्राप्ति का प्रत्यक्ष स्रोत नहीं होकर अप्रत्यक्ष स्रोत है। इस विधि द्वारा अध्ययन में अनुसंधानकर्ता तथा सूचनादाता में प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित न होकर अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है। प्रश्नावली अनुसंधानकर्ता द्वारा तैयार की गई प्रश्नों की एक सूची होती है जिसे वह उत्तरदाता के पास डाक द्वारा इस अनुरोध के साथ भेजता है कि इसे भरकर समय पर अवश्य लौटायें। इस विधि का प्रयोग उस दशा में किया जाता है जब अध्ययन क्षेत्र या समग्र इतना विस्तृत हो कि सभी सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क कर तथ्य संकलित करना सम्भव नही हो।

प्राथमिक स्त्रोत के गुण :–

तथ्य संकलन के प्राथमिक स्त्रोतों के गुण या लाभ इस प्रकार है :–

1. इस प्रकार के स्त्रोत द्वारा तथ्य संकलन हेतु प्रयुक्त अध्ययन में लचीलेपन का गुण पाया जाता है।

2. प्राथमिक स्त्रोत व्यक्तिगत क्षेत्र के अध्ययन के लिये उपर्युक्त है।

3. प्राथमिक स्त्रोत द्वारा संकलित तथ्य अधिक यथार्थ एवं विश्वसनीय होते है।

4. प्राथमिक स्त्रोत में आन्तरिक गुण सूचनाओं का संकलन सम्भव हो पाता है।

5. प्राथमिक स्त्रोत से संकलित सामाग्री की सहायता से प्रमाणिक निष्कर्षो तक पहुँचना सम्भव होता है।

6. प्राथमिक स्त्रोत द्वारा तथ्य संकलन में समय व धन की काफी बचत होती है।

<u>प्राथमिक स्त्रोत के दोष</u> :–

प्राथमिक स्रोतों द्वारा तथ्य संकलन के निम्नलिखित दोष है।–

1. प्राथमिक स्रोत द्वारा तथ्य संकलन मे पक्षपात व मिथ्या झुकाव की काफी सम्भावना होती है।

2. प्राथमिक स्रोत द्वारा तथ्य संकलन में एक कठिनाई यह आती है कि शोधकर्ता कई बार सुविधानुसार तथ्य संकलित कर लेता है। कई तथ्यों को तोड़–मरोड़ कर ग्रहण कर लेता है।

3. प्राथमिक स्त्रोतों से तथ्यों की स्वाभाविकता के नष्ट हो जाने का खतरा रहता हैं।

4. इस स्त्रोत की सहायता से अतीत की घटनाओं का अध्ययन या ऐतिहासिक विधि द्वारा अध्ययन सम्भव नही है।

5. अक्सर यह देखा जाता है कि अध्ययनकर्ताओं में प्रशिक्षण का अभाव होता हैं परिणाम स्वरूप शोध की सफलता संदिग्ध रहती हैं।

6. प्राथमिक स्त्रोत द्वारा तथ्य संकलन में सापेक्ष दृष्टि से अधिक मानव शक्ति एवं समय की आवश्यकता पड़ती है।

(2) <u>द्वैतीयक स्त्रोतों</u> :–

द्वैतीयक स्त्रोतों या सामाग्री को जिन स्त्रोतों से प्राप्त किया जाता है, उन्हें तथ्य संकलन के द्वैतीयक स्त्रोतों कहते है।

<u>जॉन मेज के अनुसार</u> – द्वैतीयक स्त्रोतों का निर्माण कही सुनी बातों एवं अप्रत्यक्ष दर्शको। के आधार पर होता है।

<u>श्रीमती पी.वी. यंग के अनुसार</u> – इन तथ्यों का उपयोग करने वाले एवं इन्हें प्रथम बार एकत्रित करने वाले लोग पृथक–पृथक होते है।

द्वैतीयक स्त्रोतों से कई बार सुगमता से ऐसी महत्वपूर्ण सूचनाएं मिल जाती है जो प्राथमिक स स्त्रोतों से नही मिल पाती हैं सामाजिक शोध में द्वैतीयक स्त्रोतों का प्राथमिक स्त्रोतों की तुलना में कम महत्व नही हैं। द्वैतीयक स्त्रोतों अध्ययन की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि निर्मित करने एवं अध्ययन की दिशा तय करने में उपयोगी भूमिका निभाते है।

तथ्य संकलन के द्वैतीयक स्त्रोतों को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है –प्रथम व्यक्तिगत प्रलेख तथा द्वितीय सार्वजनिक प्रलेख। इन पर विचार करने से यह स्वतः ही स्पष्ट हो जायेगा कि शोधकर्ता किन–किन स्त्रोतों से द्वैतीयक तथ्य एकत्रित कर अपने अध्ययन हेतु उपयोग में ला सकता है–

<u>व्यक्तिगत प्रलेख</u> :– व्यक्तिगत प्रलेख के अन्तर्गत वह सम्पूर्ण लिखित सामग्री आ जाती है जो एक व्यक्ति अपने स्वयं के बारे में या सामाजिक घटनाओं को एक विशेष दृष्टिकोण से देखकर समझ कर प्रस्तुत करता है।

जॉच मेज ने लिखा है– अपनी संकुचित अर्थ में व्यक्तिगत प्रलेख किसी व्यक्ति द्वारा उसकी स्वयं की क्रियाओं अनुभवों एवं विश्वासों के बारे मे स्वयं द्वारा लिखा गया एक विवरण है।

व्यक्तिगत प्रलेख व्यक्तियों एक–एक समय विशेष की परिस्थिवियों एवं भूतकाल में घटित सामाजिक घटनाओं को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समझने में योग देते है। ये सामाजिक क्रियाओं को समझने हेतु आवश्यक सामग्री प्रदान करते हैं इनकी इस दृष्टि से काफी महत्ता है कि इनके आधार पर एक विशिष्ट समय में लोगों के रहन–सहन, खान–पान, व्यवहार प्रतिमान सामाजिक आदर्श नियम, आदि का पता चलता है। पत्र, डायरी, जीवन इतिहास एवं संस्मरण व्यक्तिगत प्रलेखों के अन्तर्गत आते है। यहाँ अब हम इन्ही पर विचार करेगें।

(1) <u>पत्र</u> :–

सामान्य व्यक्ति अपने जीवन में कई पत्र लिखता है। यद्यपि अधिकांशतः पत्र वैयक्तिक होते है, परन्तु फिर भी ये महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते है अध्ययन की दृष्टि से इतिहासकारों एवं प्रलेखों द्वारा पत्रों का विशेष उपयोग किया जाता है। थामस एवं मैन कि द्वारा पत्रों का पोलैण्ड के कृषकों के अपने अध्ययन में सर्वप्रथम पत्रों को काम में लिया गया। व्यक्तिगत पत्र अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करती है। इनमें पत्र लिखने वालो के विचारों एवं दृष्टिकोणों को समझने में मदद मिलती है। पत्र अपने निकट के व्यक्तियों को लिखे जाते है। अतः इनमें व्यक्ति महत्वपूर्ण विचारों, भावनाओं, जीवन की प्रमुख घटनाओं, अनुभवों, प्रेम, घृणा अपनी योजनाओं आदि को व्यक्त करता है। पत्रों में राजनैतिक घटनाओं एवं सामाजिक जीवन का विवरण मिलता है। जीवन के अन्तरंग पक्षों से सम्बंधित बातें पत्रों में लिखी जाती है।

(2) <u>डायरी</u> :–

कई लोग अपने दिन–प्रतिदिन की घटनाओं को डायरी के रूप में लिखते है। चूंकि डायरी एक पूर्णतः गोपनीय दस्तावेज है। अतः व्यक्ति अपने जीवन की रहस्यमयी बातो का पता लगाने का एक विश्वसनीय स्रोत है।

जन्मेज के अनुसार – सबसे ज्यादा रहस्योद्घाटन करने वाली होती है क्योंकि एक ओर व्यक्ति को इनका जनता के सामने प्रदर्शित होने का भय नही होता एवं दूसरी ओर इनमें घटनाओं एवं क्रियाओं के घटित एवं सम्पन्न होने के समय ही उनको बहुत स्पष्ट रूप में लिख लिया जाता हैं।

मेज के इस कथन से सामाजिक अनुसंधान में डायरी का तथ्य संकलन के स्त्रोत के रूप में महत्व स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है। इससे गोपनीय तथ्य प्राप्त होते है जो सापेक्ष दृष्टि से अधिक विश्वसनीय होते है। वह प्रदर्शन या प्रकाशन के उद्देश्य से डायरी में

घटनाओं का यद्यपि चित्रण करता है। वह प्रदर्शन या प्रकाशन के उद्देश्य के डायरी नही लिखता है।

(3) जीवन इतिहास :–

तथ्य संकलन के द्वैतीयक स्त्रोत के रूप में जीवन का इतिहास काफी महत्व का है।

जॉन मेज ने लिखा है कि– वास्वविक अर्थ में जीवन इतिहास का तात्पर्य किसी विस्तृत आत्म कथा से होता हैं। सामान्य अर्थो में इसका प्रयोग किसी भी जीवन सम्बन्धी सामग्री के लिये किया जा सकता हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि जीवन इतिहास का तात्पर्य किसी भी प्रकार की जीवन सम्बन्धी सामग्री से हैं। जीवन इतिहास के मुख्यतः दो रूप देखने को मिलते है प्रथम आत्मकथा जिसे व्यक्ति अपने सम्बन्ध में स्वयं लिखता है तथा द्वितीय जीवन चरित्र जिसे कोई किसी अन्य व्यक्ति की जीवन सम्बन्धी घटनाओं के बारे में लिखता हैं साधारणतः प्राप्त व्यक्तियों के जीवन चरित्र ही लिखा जाता है।

(4) सस्मरण :–

कई लोग अपनी यात्राओं, जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं एवं रोमांचकारी अनुभवों को संस्मरण के रूप में लिखते हैं या इन्हें समय–समय पर अन्य व्यक्तियों को सुनातें हैं। ये संस्मरण न केवल व्यक्ति के जीवन अनुभवों का लेखा–जोखा ही प्रस्तुत करते हैं बल्कि काल विशेष के समाज की दशाओं का चित्रण भी करते हैं यात्राओं व महत्वपूर्ण घटनाओं के संस्मरण लिखने का प्रचलन प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। उदाहरण के रूप के कोलम्बस, ह्वेनसांग, फाहियान एवं मेगस्थनीज ने काफी उपयोगी संस्मरण लिखा। ब्रिटिश शासन काल में कई अधिकारी द्वारा ऐतिहासिक पद्धति के आधार पर जनपद, संस्मरण लिखे गये इन संस्मरणो से एक काल विशेष की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का पता चलता है। इन लोगों के रहन–सहन, रीति–रिवाजों धर्म भाषाओं एवं महत्वपूर्ण जीवन पद्धति अर्थात संस्कृति को समझने में मदद मिलती है।

(5) सार्वजनिक प्रलेख :–

सामग्री संकलन के द्वैतीयक स्त्रोत के रूप में सार्वजनिक प्रलेख का भी महत्व है। सार्वजनिक प्रलेख तैयार कराये जाते है कभी व्यक्तिगत स्तर पर भी तथ्य संकलन किये जाते हैं और यदि उन्हें सार्वजनिक प्रलेख के अन्तर्गत ही आती है सार्वजनिक प्रलेख व्यक्तिगत प्रलेख की तुलना में अधिक विस्तृत एवं व्यापक जानकारी प्रदान करने वाले और अधिक विश्वसनीय होते हैं। सार्वजनिक प्रलेखों को प्रमुख दो भागों में विभाजित किया जाता है– प्रथम प्रकाशित प्रलेखों, द्वितीय अप्रकाशित प्रलेख।

(1) प्रकाशित प्रलेख :–

सरकारी व गैर सरकारी संगठनो द्वारा समय–समय पर कई तथ्य प्राथमिक रूप से संकलित कराये जातें है जिन्हें सार्वजनिक उपयोग हेतु प्रकाशित करा दिया जाता है। यहाँ हम प्रमुख प्रकाशित सार्वजनिक प्रलेखों का उल्लेख करेगें।

(अ) शोध संस्थानों के प्रतिवेदन :–

विभिन्न शोध संस्थान अपने शोध कार्यों का विवरण प्रस्तुत करने हेतु समय–समय पर प्रतिवेदन प्रकाशित करते है यह सामग्री अन्य शोधकर्ताओं के लिए काफी उपयोगी प्रमाणित होती है टाटा समाज, विज्ञान संस्थान, समाज विज्ञान शोध परिषद एवं राष्ट्रीय शैक्षणिक शोध तथा प्रशिक्षण संस्थान, समाज विज्ञान शोध परिषद एवं राष्ट्रीय व्यावहारिक अधिक शोध सामग्री उपलब्ध प्रतिवेदनों का समय–समय पर प्रकाशन कराकर महत्वपूर्ण शोध सामग्री उपलब्ध करायी है।

(ब) **व्यक्तिगत शोधकर्ताओं के प्रकाशन :–**

अनेको शोध छात्र विभिन्न क्षेत्रों में अपना शोध कार्य सम्पन्न कर शोध निबन्ध प्रकाशित कराते है। ये प्रकाशन भी सार्वजनिक प्रलेख के रूप में द्वैतीयक सामग्री का प्रमुख स्त्रोत है।

(स) समितियों व आयोगो के प्रतिवेदन :–

अनेकों सरकारी व गैर सरकारी समितियों तथा आयोगो द्वारा समय–समय पर अपने प्रतिवेदन प्रकाशित कराये जाते है। इन समितियों व आयोगो द्वारा कई प्रकार के तथ्य संकलित कराये जाते है, जैसे– शिक्षा सम्बन्धी आकड़ें अपराध सम्बन्धी आकड़ें निर्धनता व बेकारी सम्बन्धी आकड़ें, जिन्हें सार्वजनिक उपयोग हेतु प्रकाशित करा दिया जाता हैं मद्य निषेध जाँच समिति, राष्ट्रीय नियोजन समिति, योजना आयोग, चुनाव आयोग आदि के द्वारा प्रकाशित प्रतिवेदन काफी उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

(द) व्यावसायिक संस्थाओं एवं परिषदों का प्रकाशन :–

उत्पादन परिषद, बाल कल्याण परिषद, सूती कपड़ा मिल, संघ, आर्थिक व सांख्यिकीय र्निदेशालय, कृषि विभाग, चौम्बर आफ कामर्स आदि के प्रकाशन तथ्य संकलन के महत्वपूर्ण द्वितीयक स्रोत है।

(य) अन्तर्राष्ट्रीय संगठनोंके प्रकाशन :–

संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन, विश्व स्वास्थ्य संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय बाल सहायता कोष आदि के द्वारा समय–समय पर प्रकाशित सामग्री तथ्य संकलन का विश्वसनीय स्त्रोत है।

(र) पत्र–पत्रिकाएं :–

विभिन्न शोध पत्र–पत्रिकाएं समय–समय पर प्रकाषित होते रहते है इनके अलावा दिन प्रतिदिन की घटनाओं का विवरण समाचार पत्रों में प्रकाशित होता हैं। उनमें कई लेख व सम्पादकीय भी छपते रहते है। रेडियो व दूरदर्शन भी मूल्यवान सामग्री उपलब्ध कराते है। यद्यपि संचार के इन साधनों से महत्वपूर्ण तथ्य तो प्राप्त होते है, परन्तु शोध कार्य हेतु उनका उपयोग बड़ी सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। ऐसे तथ्यों की विश्वसनीयता का पता लगा लिया जाना चाहिए।

(ल) अप्रकाशित प्रलेख :–

सरकारी व गैर सरकारी संगठनों द्वारा एकत्रित कुछ सामग्री उनकी गोपनीयता का बनाये रखने हेतु प्रकाशित नहीं करायी जाती जबकि कुछ सामग्री अधिक या अन्य कारणों से प्रकाशित नही हो पातीं पुलिस विभाग, न्याय विभाग, सरकारी कार्यालयों आदि के द्वारा समय–समय पर कई महत्वपूर्ण सूचनाएं एकत्रित करायी जाती है। परन्तु उन्हें रिकार्ड या दस्तावेजों के रूप में ही सुरक्षित रखा जाता है। प्रकाशित नही कराया जाता है। ऐसी सामग्री को अभिलेख कहा जाता है। ये अप्रकाशित दस्तावेज भी द्वैतीयक सामग्री के प्रमुख स्त्रोत है। यद्यपि इनका उपयोग करने के लिये आज्ञा करनी पड़ती है। अप्रकाशित प्रलेख के अन्तर्गत द्वैतीयक सामग्री में ये स्त्रोत आते है।

अभिलेख – विभिन्न सरकारी, गैर सरकारी कार्यालयों में उनकी आवश्यकतानुसार कई प्रकार के आकड़े व सूचनायें एकत्रित करके रखे जाते हैं। यह सम्पूर्ण सामग्री विभिन्न समितियों, संगठनों, आयोगो के प्रतिवेदनों व समय–समय पर आयोजित होने वाली बैठकों की कार्यवाहियों के रूप में होती है। यह सामग्री यद्यपि गोपनीय है, परन्तु काफी विश्वसनीय होती है।

(2) अनुसंधानकर्ताओं के प्रतिवेदन :–

अनेक अनुसंधानकर्ता शोधकार्यो के आधार पर महत्वपूर्ण प्रतिवेदन भी तैयार कर लेते है। शोध निबन्ध तो लिख लेते है, परन्तु उनमें से अधिकांश अप्रकाशित ही रह जाते है। ये भी सूचना प्राप्ति एवं सामग्री के सत्यापन के प्रमुख स्त्रोत हैं।

(3) पाण्डुलिपियां :–

कुछ महापुरूष समाज सुधारक नेता एवं विभिन्न क्षेत्रों के ख्याति प्राप्त व्यक्ति विभिन्न विषयों का गहन अध्ययन एवं तथ्य संकलित कर पाण्डुलिपियां तैयार करते है। वे किसी कारणों से इन्हें प्रकाशित नही करा पाये इनमें काफी उपयोगी सामग्री होती है। शोध हेतु इन पद्धतियों को प्राप्त करना काफी कठिन होता है। कई बार इन्हें संग्रहालयो में सुरक्षित रख दिया जाता है वही इनका उपयोग भी उठाया जाता है।

बोधगम्य प्रश्न :–

1. तथ्य संकलन से आप क्या समझते है? इसके विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए?

2. प्राथमिक स्त्रोत क्या है? इसके गुण व दोषों की व्याख्या कीजिए?

3. व्यक्तिगत प्रलेख कया है? सार्वजनिक प्रलेख से इसकी तुलना कीजिए?

अध्याय–7

2.3 Method of data collection:

सामाजिक अनुसंधान में साक्षत्कार पद्वति तथा वैयक्तिक सेवा कार्य में साक्षात्कार

(Interview Method in Social Research and Interviewing in case work)

अनुसंधान में साक्षात्कार विधि तथा वैयक्तिक सेवा कार्य में साक्षात्कार पद्वति : सामाजिक अनुसंधान तथा सर्वेक्षण के अन्तर्गत संकलन के उपकरण के रूप में साक्षात्कार मौलिक रूप से एक पारस्परिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत साक्षात्कार कर्ता विषयों की प्रत्यक्ष उपस्थिति में वांछित जानकारी प्राप्त करता है। यह एक ऐसी व्यवस्थित प्रक्रिया है, जिसमें साक्षात्कारकर्ता एवं साक्षात्कारकृत के मध्य किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर परस्पर आमने–सामने होकर संवार्ता वार्तालाप अथवा उत्तर–प्रति उत्तर होता है। यह एक मनोवैज्ञनिक स्थिति है जिसमें साक्षात्कारकर्ता तथा उत्तरदाता एक दूसरे के निकट आते है तथा विचार–विमर्श उन्मुक्त स्वतन्त्र, सौहार्दपूर्ण पर्यावरण में हृदय खोलकर करते है।

प्रत्येक व्यक्ति साक्षात्कार की प्रक्रिया में भाग लेता हैं कभी उनका साक्षात्कार दूसरा व्यक्ति लेता है कभी वह स्वयं दूसरों का साक्षात्कार लेते है। सामाजिक वैकक्तिक कार्यकर्ता भी अपना कार्य साक्षात्कार से प्रारम्भ करता है और उपचार तक साक्षात्कार करता है इस प्रकार वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिये साक्षात्कार एक कला और विज्ञान दोनों है जिसके सिद्धान्तों तथा प्रविधियों का व्यावहारिक ज्ञान कार्यकर्ता के लिये आवश्यक है।

साक्षात्कार की परिभाषा :–

साक्षात्कार व्यक्ति के पारस्परिक सम्पर्क की क्रमबद्ध प्रणाली है जिसके माध्यम से दूसरे व्यक्ति के अपरिचित तथ्यों का ज्ञान प्राप्त होता है। इसका आधार केवल देखने पर नहीं है, बल्कि निकटता के द्वारा तथ्यपरक अनुभूति की उपलब्धियां करना है।

1. **पी.वी. यंग के अनुसार**– "The interview may be regarded a systematic method by which one person enters more or less imaginatively into the inner file of another who is generally a comperative stanger for him."

2. **टैडर तथा लिण्डमैन के अनुसार**– साक्षात्कार के अन्तर्गत दो व्यक्तियों या अधिक व्यक्तियों के बीच संवाद अथवा मौखिक प्रत्युत्तर होते हैं।

3. **श्री महेन्द्र नाथ बुस**– एक साक्षात्कार कुछ विषयों को लेकर व्यक्तियों के आमने–सामने के रूप में कहा जा सकता है।

4. **वी.एम. पामर के शब्दों में**– साक्षात्कार व्यक्तियों के बीच एक सामाजिक स्थिति है जिनमें अन्तर्निहित मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अर्न्तगत यह आवश्यक है कि दोनों व्यक्ति उत्तर–प्रत्युत्तर करते रहें। यद्यपि साक्षात्कार के सामाजिक उद्देश्य से काफी

सम्बंधित पक्षों से अध्ययन विषय के सम्बन्ध में काफी विविध उत्तर प्राप्त होने चाहिए।

5. सिन पाओ यांग के अनुसार– साक्षात्कार क्षेत्रीय कार्य की एक ऐसी प्रविधि है जो कि व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहार की निगरानी करने, कथनों को अंकित करनें व सामाजिक अथवा सामूहिक अन्तःक्रिया के सामूहिक परिणामों का निरीक्षण करने के लिये प्रयोग में ली जाती है।

6. सी.ए. गोजर के शब्दों में– एक सर्वेक्षण, साक्षात्कार, साक्षात्करकर्ता तथा उत्तरदाता के माध्य एक वार्तालाप है, जिसका उद्देश्य उत्तरदाता से निश्चित सूचना प्राप्त करना होता है।

7. एफ.एम. कार्लिगर के अनुसार– साक्षात्कार एक आमने–सामने अर्न्तव्यैक्तिक भूमिका वाली परिस्थितियां हैं, जिसमें एक व्यक्ति साक्षात्कारकर्ता, साक्षात्कार किये जाने वाले व्यक्ति, उत्तरदाता से प्रश्न पूछता हैं प्रश्नों का निर्माण अनुसंधान संस्था के उद्देश्यों के लिये उचित उत्तरों की प्राप्ति हेतु किया जाता हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि साक्षात्कार वह प्रक्रिया है जिसमें दो या अधिक व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आते है और जिस संघर्ष के पीछे कुछ उद्देश्य निहित होते है। इस प्रकार के उद्देश्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साक्षात्कार उद्देश्य से प्रेरित एक औपचारिक वार्ता है।

साक्षात्कार की विषेषताएं :–

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर साक्षात्कार की निम्नांकित विशेषताएं होती हैं–

1. दो या दो से अधिक व्यक्ति

2. विशिष्ट उद्देश्य

3. इसके अर्न्तगत पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित कर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की झलक प्राप्तकरता हैं।

4. साक्षात्कार के अर्न्तगत वार्तालाप के दौरान निश्चित आयोजित संतुष्ट क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रीभूत किया जाता हैं।

5. साक्षात्कार के अर्न्तगत किसी व्यक्ति विशेष से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर पूर्व निश्चित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर कुछ सूचनाएं प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।

साक्षात्कार का संचालन :–

साक्षात्कार के सन्दर्भ में प्रारम्भिक चिन्तन कर लेने के उपरान्त साक्षात्कार प्रक्रिया या सोपान का द्वितीय चरण, जिसे साक्षात्कर का संचालन व क्रियान्वयन कहते है, प्रारम्भ होता है। इसके अन्तर्गत निम्नांकित उप सोपान हैं–

(क) साक्षात्कारकर्ता का साक्षात्कारदाता से पूर्व निर्धारित समय व स्थान पर सम्पर्क स्थापित करना।

(ख) साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार का उद्देश्य सूचनादाता की योग्यतानुसार स्पष्ट करना।

(ग) साक्षात्कार के उद्देश्यों से स्पष्टीकरण के बाद एक अनौपचारिक उपागम के आधार पर आवश्यकतानुसार साक्षात्कृत से घनिष्ठता स्थापित करना।

(घ) साक्षात्कार में हो रहे अध्ययन के सम्बन्ध में साक्षात्कृतों से सहयोग की भावना करनी चाहिये।

(ङ) साक्षात्कार के उद्देश्य को स्पष्ट करने तथा सहयोग की भावना करने के पश्चात् प्रमुख साक्षात्कार प्रारम्भ करना चाहिये।

(च) साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कृत की बातों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए।

(छ) साक्षात्कार लेते समय साक्षात्कृत को उत्तम मानसिक स्थिति रखने के लिए आवश्यक है कि उसे साक्षात्कारकर्ता को बीच–बीच में प्रोत्साहित करता रहे ताकि साक्षात्कृत का उद्देश्य बढ़े और वह साक्षात्कार में अधिक रूचि ले सके।

(ज) साक्षात्कार की सत्यता को बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि कुछ पुनः स्मृति वाक्यों जैसे– और तब क्या हुआ तो आपने क्या अनुभव किया आदि को स्मरण कराने में साक्षात्कारकर्ता को अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए साक्षात्कृत को यह अनुभव हो कि वास्तव में यह बात अत्यधिक महतवपूर्ण है।

(झ) साक्षात्कार की गरिमा को बनाये रखने के लिये यह अति आवश्यक है कि युक्तियुक्त समसामयिक प्रश्न पूछें जाये तथा साक्षात्कृत की समस्याओं से सम्बन्धित होना चाहिये। साक्षात्कृत की सहायता प्राप्त करने के लिए यथासम्भव परोक्ष प्रश्न ही पूछे जाने चाहिये।

साक्षात्कार में संकट अथवा क्रांतिक बिन्दु :–

साक्षात्कार की प्रक्रिया में तृतीय प्रमुख चरण साक्षात्कार में संकट अथवा क्रांतिक बिन्दु है। साक्षात्कार के दौरान कुछ क्रान्तिक बिन्दु उत्पन्न हो जाते है। साक्षात्कृत जब अप्रिय घटनाओं से प्रभावित होता है, तब ऐसी स्थिति में ऐसे प्रसंग को उस समय स्थगित कर दिया जाता है तथा एक समय के लिये वार्तालाप का एक अन्य उपक्रम हेतु आश्वस्त करना चाहिये।

मनौवेगात्मक अवरोधन तब भी घटित हो सकता है जब साक्षात्कृत अफलीभूत ढंग से एक जटिल परिस्थिति की व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास करता है अथवा एक अति व्यवस्थित अभिवृत्ति नही कर पाता है। ऐसी परिस्थितियों में वह स्वयं अपना ध्यान दूसरी दिशा में आकर्षित करने की इच्छा कर सकता है तथा साक्षात्कार कर्ता से प्रत्यक्षतः प्रश्न पूछ करता है। मर्टन तथा केन्डाल ने ऐसी स्थिति को अनुसंधान के लिए अच्छा लक्षण बताया है। उनके अनुसार ऐसी परिस्थिति में साक्षात्कृत अपने जीवन की अन्तरंग बातों को प्रकट कर सकता हैं यदि साक्षात्कारकर्ता अपनी प्रतिक्रिया का वर्णन करता है तो समभ्वतः

साक्षात्कार की वैचारिकी प्रभावित हो सकती है तथा उसकी अपनी प्रतिक्रियायें स्वाभाविक न होकर साक्षात्कारकर्ता के मनोनुकूल हो जाय साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार के दौरान अपनी वैचारिकी को साक्षात्कृत पर थोपने का प्रयास नहीं करना चाहिए। प्रत्युत साक्षात्कृत द्वारा किये गये प्रश्नों के रूप में ही देने चाहिए, जिससे साक्षात्कृत को ही वक्ता की भूमिका अदा करना पड़े।

साक्षात्कार का समापन :–

साक्षात्कार का समापन साक्षात्कार के सोपान का चतुर्थ चरण है। वास्तव में प्रत्येक साक्षात्कार का समापन एक स्वाभाविक बिन्दु है। सर्वोत्तम परिणाम उस समय प्राप्त किये जा सकते है जब प्रत्येक साक्षात्कार उस समय समाप्त होता है जबकि साक्षात्कृत अन्त तक चुस्त होता है तथा स्वयं अन्य वार्तालाप के लिये प्रस्ताव रखता है। यदि दोनों शारीरिक तथा मानसिक रूप से थकान का अनुभव करते है अथवा साक्षात्कार के लिये निर्धारित प्रश्न समाप्त हो चुके हों, तो ऐसी स्थिति में द्वैतीयक बैठक के लिये विशेष बल नही देना चाहिए। यदि साक्षात्कार पूर्णतया समाप्त करना हो तो ऐसे समय मे यह पूछना चाहिए कि क्या करेगे? हम लोगो ने कौन सी संवार्ता छोड़ दी है? क्या हम कुछ विषयों पर बात नही कर पाते है? आदि।

अनेक बार ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती है कि साक्षात्कृत विषय व प्रसंग में अत्यधिक अभिरूचि के साथ सूचनायें देता ही रहता है तो ऐसी स्थिति में साक्षात्कारकर्ता के समक्ष यह समस्या उठ खड़ी होती है कि साक्षात्कार को किस प्रकार समाप्त किया जाय। यदि वह नूतन बातों पर प्रकाश मेला रहा हो तो उसकी बातो को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए, परन्तु यदि उन बातों में पुनः वृत्ति है तो इस विषय पर पुनः आश्वासन देते हुए साक्षात्कार को उस समय समाप्त किया जा सकता है। अन्ततः किसी भी साक्षात्कार को अचानक नही बन्द करना चाहिये।

साक्षात्कार के परिणामों का अभिलेख :–

बहुधा साक्षात्कार में वार्तालाप के दौरान साक्षात्कृत के विवरणों का आलेखन करना कठिन कार्य है। साक्षात्कार के परिणामों के अभिलेखन में यह ध्यान देना चाहिए कि अभिलेखन में तथ्यों की वैधता बनी रहनी चाहिए। अभिलेखन की तिथि ऐसी हो जिसके द्वारा साक्षात्कार के प्रमुख तत्व सही–सही प्राप्त हो सके। प्रायः अभिलेखन हेतु साक्षात्कारकर्ता दो तरीकों का अनुशीलन कर सकता है प्रथमतः यह कि साक्षात्कार के दौरान ही तथ्यों का अभिलेखन कर लिया जाये तथा द्वितीयक यह कि साक्षात्कार के तुरन्त उपरान्त परिणामों का अभिलेखन कर लिया जाय। दोनो विधियों में अपने लाभ एवं सीमाएं हैं। प्रथम तिथि की तो सीमा यह है कि वार्तालाप के समय अत्यधिक लिखते रहने में वार्तालाप का धारा प्रवाह रुक जाता है अथवा शिथिल हो जाता है। इस तरह साक्षात्कार समाप्त होने का भय बना रहता है। द्वितीय पद्धति की सीमा तक यह है कि साक्षात्कार समाप्त होने के उपरान्त अभिलेखन करने में वार्तालाप की बहुत सी महत्वपूर्ण बातें विस्तृत हो जाती है। अतः अभिलेखन आत्मनिष्ठ हो जाता है।

इन दोनों सीमाओं को ध्यान में रखते हुए हम एक मध्यम मार्ग का अनुसरण करते है। इस मध्यम मार्ग में हम साक्षात्कार के दौरान कुछ महत्वपूर्ण वार्तालाप का अभिलेखन करते जाएं तथा साक्षात्कार के दौरान तुरन्त बाद में उसे व्यवस्थित करके लेखवद्व कर लें।

उपर्युक्त चरणों का अनुसरण करते हुए एक अनुसंधानकर्ता अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल हो सकता है तथा अनुसंधान के अन्तर्गत साक्षात्कार करने की विधि इन्ही सोपानों के मध्य होती है। अतः एक अनुसंधानकर्ता को उपर्युक्त चरणों का ज्ञान होना आवश्यक है।

वैयक्तिक सेवा कार्य में साक्षात्कार पद्धति :–

वैक्तिक सेवा कार्य मूल रूप से साक्षात्कार पर आधारित है। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता अपना कार्य साक्षात्कार से प्रारम्भ करता है और उपचार तक साक्षात्कार करता है। इस प्रकार वैयक्तिक सेवा कार्य कार्यकर्ता के लिए साक्षात्कार एक कला तथा विज्ञान है जिसके सिद्धान्तों तथा प्रविधियों का व्यावहारिक ज्ञान कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है।

वैयक्तिक सेवा कार्य साक्षात्कार का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की सहायता करना है जिससे वह अपनी समस्या का समाधान करने में सक्षम हो सकें। वह मुख्य रूप से उद्देश्य होता है अतएव उसके उद्देश्यों को निम्न रूप से स्पष्ट किया जा सकता है–

(1) सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता के लिये साक्षात्कार का उद्देश्य दूसरे व्यक्तियों के जीवन सम्बन्धी तथ्यों को प्राप्त करता है।

(2) सेवार्थी की समस्या के समाधान या सहायता के लिये आवश्यक है कि कार्यकर्ता सूचना एकत्र करने के समय समस्या के स्वरूप का चित्रण भी अपने मानस पटल पर कर लें जिससे उपचारात्मक प्रयास सम्भव हो सकें।

(3) व्यक्ति में निहित गुणात्मक तथ्यों अर्थात उसके विचार, भावना, विश्वास की जानकारी साक्षात्कार के माध्यम से की जा सकती है।

(4) सेवार्थी की समस्या का सम्बन्ध पर्यावरण से होता है या समस्या पर उसके पर्यावरण का प्रभाव होता है। अतः साक्षात्कार के द्वारा इनकी जानकारी प्राप्त की जाती है।

अनुसंधान में साक्षात्कार विधि :–

सामाजिक अनुसंधान तथा सर्वेक्षण में साक्षात्कार प्राथमिक तथ्यों को प्राप्त करने का एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण उपकरण है। अनुसंधान में साक्षात्कार के निम्नांकित मुख्य उद्देश्य होते है–

1. प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा सूचनाएं प्राप्त करना,

2. प्राक्कल्पनाओं का स्त्रोत,

3. गुणात्मक तथ्यों को प्राप्त करना,

4. आन्तरिक तथा व्यक्तिगत तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना,

5. अवलोकन के लिये अवसर पाना,

6' सत्यापनशीलता के लिये अवसर पाना,

7. विविध सूचनाएं इकट्ठा करने में सहायता करता है।

साक्षात्कार सामाजिक अन्तःक्रिया की एक प्रक्रिया है। इसके संचालन व क्रियान्वयन के लिए अत्यन्त सावधानी व सर्तकता की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए इसके परिणामों व उपलब्धियों कों विश्वसनीय तथा वैद्य बनाने के लिए इसे विधिवत व क्रमबद्ध योजना बनाकर संगठित किया जा सकता है। साक्षात्कार अभियान सामान्यतः पाँच प्रक्रियाओं व सोपानों से गुजरता है, जिससें से प्रत्येक सोपान एक स्पष्ट केन्द्रीय उद्देश्य की ओर संकेत करता है। ये सोपान निम्नांकित है–

साक्षात्कार का प्रारम्भिक चिन्तन वास्तविक साक्षात्कार करने से पूर्व उसके बारे में सम्यक् रूप से विचार कर लेना चाहिए। लिकंन को जब किसी व्यक्ति से साक्षात्कार करना होता था तो अपने समय का एक तृतीयांश इसके चिंतन में लगाता था कि वह क्या कहेगा तथा द्विय तृतीयांश कि उसका साक्षात्कार क्या रहेगा? उस व्यक्ति से सम्पर्क करना सरल होता है जिसके बारे में हम पूर्व से ही अपने मस्तिष्क में परिकल्पना कर लेते है। यह सम्भव है कि अग्रिम रूप से योजना को नवनीय होना चाहिये तथा नूतन विकास की प्रत्याशा रखनी चाहिए। साक्षात्कार के प्रारम्भिक चिन्ता के सोपान के अन्तर्गत निम्नांकित उप–सोपान हैः–

(क) समस्या के बारे में पर्याप्त होना चाहिए।

(ख) सूचनादाताओं के बारे में पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए।

(ग) साक्षात्कार के प्रकार का भी निर्धारण करना चाहिए।

(घ) साक्षात्कार के उपकरणों–साक्षात्कार निर्देशिका तथा साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण आवश्यक है।

(ङ) साक्षात्कृतों का भी उपर्युक्त चयन होना चाहिए।

(च) साक्षात्कारकर्ता का साक्षात्कृत से परिचय होना चाहिए।

(छ) साक्षात्कार के लिए उपर्युक्त स्थान व समय का निर्धारण भी करना चाहिए।

वैयक्तिक सेवा में कार्य में साक्षात्कार एक अहम् भूमिका निर्माता है। बिना साक्षात्कार के वैयक्तिक सेवा कार्य सम्भव नहीं है। साक्षात्कार के लिए कार्यकर्ता को कई सोपानों से होकर गुजरता पड़ता है। सर्वप्रथम कार्यकर्ता किसी अभिकरण के तहत यह पता लगाने का प्रयत्न करता है कि कौन–कौन व्यक्ति किन–किन समस्याओं से ग्रस्त है। तत्पश्चात् कार्यकर्ता यह देखता है कि अभिकरण के तहत उनकी समस्याओं का समाधान हो सकता है या नही। यदि हो सकता है तो किस सीमा तक तत्पश्चात् कार्यकर्ता समस्याग्रस्त व्यक्ति से समपर्क स्थापित करता है और उसे अपनी समस्याओं के प्रति चेतन बनाता है। उसे इस बात का अहसास कराता है कि उनकी समस्यायें किन कारणों का परिणाम है तथा उनके

सहयोग से समस्या का समाधान हो सकता है। सेवार्थी के द्वारा सहयोग आश्वासन मिलने पर कार्यकर्ता उनसे उनके पूर्व जीवन सम्बन्धी प्रश्न तथा वर्तमान जीवन सम्बन्धी प्रश्न पूछता है तथा सेवार्थी कार्यकर्ता यह आश्वासन देता है कि उसके द्वारा बताये गये तथ्य गोपनीय रखे जायेगे।

सेवार्थी की समस्या के अध्ययन मे भी साक्षात्कार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं साक्षात्कार द्वारा सेवार्थी के जीवनी के बारे में पता चलता है तथा यह भी पता चलता है कि समस्या का कारण क्या है जिससे सेवार्थी की समस्या के अध्ययन में भी सहायता मिलती है। समस्या के कारणों का पता लग जाने के पश्चात् साक्षात्कार द्वारा यह भी सम्भव होता है कि उनके रूचि तथा मनोवृत्ति के अनुसार उपचार किया जाए। इस प्रकार साक्षात्कार समस्या के अध्ययन, निदान और उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं।

अनुसंधान में साक्षात्कार विधि तथा वैक्तिक सेवा कार्य में अनुसंधान पद्धति में अन्तर :–

यद्यपि साक्षात्कार का महत्व अनुसंधान के लिये भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि वैयक्तिक सेवा कार्य के लिये अनुसंधान में साक्षात्कार तथा वैयक्तिक सेवा कार्य के साक्षात्कार में यद्यपि घनिष्ठ सम्बन्ध है। परन्तु समानता के होने के बावजूद भी उनमें विभिन्नता है। दोनों में निम्नांकित विभिन्नताएँ है–

(1) अनुसंधान में साक्षात्कारकर्ता किसी एजेन्सी के तहत साक्षात्कार नहीं करता है जबकि वैयक्तिक सेवा कार्य में साक्षात्कार किसी एजेन्सी के तहत ही सम्भव वृद्धि है।

(2) अनुसंधान में साक्षात्कार प्राक्कल्पनाओं के स्त्रोत के रूप में कार्य करती है जबकि वैयक्तिक सेवा कार्य में प्राक्कल्पनाओं का कोई महत्व नहीं हैं।

(3) अनुसंधान में साक्षात्कार द्वारा किसी से सम्बंधित आकड़ों का सत्यापन किया जाता है जबकि वैयक्तिक सेवा कार्य में साक्षात्कार द्वारा प्राप्त आकड़ों से समस्या के समाधान का प्रयास किया जाता है।

(4) सामाजिक अनुसंधान के अन्तर्गत सामाजिक प्रघटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन साक्षात्कार के द्वारा होता है जबकि वैयक्तिक सेवा कार्य के अन्तर्गत सामाजिक मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन, निदान व उपचार किया जाता है।

(5) सामाजिक अनुसंधान में जहाँ साक्षात्कार के द्वारा एक और नवीन सामाजिक तथ्यों, सिद्धान्तों एवं विचारों की गवेषणा की जाती है वहीं दूसरी ओर पुरातन सामाजिक तथ्यों, सिद्धान्तों, विचारों की पुनः परीक्षा भी की जाती है जबकि वैयक्तिक सेवा कार्य में इस प्रकार की बात नही है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैयक्तिक सेवा कार्य में साक्षात्कार तथा सामाजिक अनुसंधान साक्षात्कार पद्धति में काफी समानता होते हुए भी असमानता है।

बोधगम्य प्रश्न

1. साक्षात्कार के अर्थ को स्पष्ट कीजिए तथा इसके विशेषताओं का वर्णन कीजिए?

2. वैयत्यिक सेवा कार्य में साक्षात्कार पद्धति की भूमिका को समझाइयें?

3. अनुसंधान में साक्षात्कार विधि को समझाइयें?

अध्याय–8

सामाजिक अनुसंधान में वैयक्तिक अध्ययन पद्धति तथा वैयक्तिक सेवा कार्य

सामाजिक अनुसंधान का महत्वपूर्ण पद्धतियों को साधारण रूप में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है प्रथम सांख्यिकीय विधि तथा द्वितीय वैयक्तिक अध्ययन पद्धति। समाज की परिस्थितियों का गुणात्मक अध्ययन प्रथम विधि द्वारा किया जाता है जबकि समाज की परिस्थितियों के गुणात्मक पक्ष का अध्ययन सामाजिक अनुसंधान की एक अत्यन्त प्राचीन विधि व्यक्तिगत अध्ययन द्वारा किया जाता है।

व्यक्तिगत अध्ययन एक अत्यन्त गहन प्रविधि है। सामाजिक विद्वानों की अनेक महत्वपूर्ण समस्यायें जैसे व्यक्ति संस्था एवं समुदाय के गहन अध्ययन के लिये ही जब प्रविधि का सूत्रपात हुआ। यह अत्यन्त प्राचीन प्रविधि भी है। सामाजिक आचरण एवं वैयक्तिक जीवन की विवेचना एवं व्याख्या के लिये अनेकों वर्षों से इस प्रविधि का प्रयोग होता आया है।

वैयक्तिक अध्ययन का अर्थ एवं परिभाषा :–

मोटे तौर पर व्यक्तिगत अध्ययन किसी व्यक्ति, संस्था या समुदाय के गहन अध्ययन के अतिरिक्त और कुछ नही है। इस प्रविधि के अन्तर्गत एक इकाई विशेष से लेकर, चाहे वह कोई व्यक्ति हो, अथवा वह कोई संस्था या समुदाय हो, उसका प्रत्येक दृष्टिकोण से उसकी सम्पूर्णता में, उसका गहन अध्ययन है। यही संक्षेप में व्यक्तिगत अध्ययन का अर्थ है।

वैयक्तिगत अध्ययन की निम्नलिखित परिभाषाएँ हैं–

श्री मती पी.वी. यंग के अनुसार– वैयक्तिक अध्ययन किसी सामाजिक इकाई चाहे वह व्यक्ति, परिवार, संस्था, सांस्कृतिक वर्ग अथवा समस्त जाति के जीवन के अनुसंधान व इसकी विवेचना करने की पद्धति को कहते है।

प्रो0 गुडे एवं हाट के शब्दों में– व्यक्तिगत अध्ययन सामाजिक तथ्यों को संगठित करने का वह तरीका है जिससे अध्ययन किये जाने वाले सामाजिक विषय के एकात्मक स्वाभाव का संरक्षण हो सके दूसरें शब्दों में यह एक प्रविधि है जिसमें किसी भी सामाजिक इकाई का समग्र में अध्ययन किया जाता है।

प्रो. ओडम का विचार है कि– व्यक्तिगत अध्ययन एक प्रतिधि है जिसके द्वारा प्रत्येक वैयक्तिक कारक, चाहे वह एक संस्था हो या एक समूह का विश्लेषण उस समूह की अन्य इकाई के सन्दर्भ में किया जाता है।

वीसेंज के शब्दों में– वैयक्तिक अध्ययन एक गुणात्मक विवेचना का रूप है जिसमें किसी व्यक्ति की परिस्थिति अथवा संस्था का अत्यन्त सावधानी सहित तथ्यपूर्ण परीक्षण किया जाता हैं।

इस प्रतिधि को एक उदाहरण द्वारा अति सरलता से समझा जा सकता है। जिस प्रकार एक वकील अपने द्वारा किये गये किसी भी केस को न्यायालय में पेष करने से पहले

उसके बारें में प्रत्येक प्रकार की जानकारी प्राप्त कर लेता है, चाहे वह जानकारी उसे किसी भी स्त्रोत से प्राप्त होती है, उसी प्रकार एक सन्यासी के अध्ययन के लिए उसके सम्पूर्ण जीवन का अध्ययन करना पड़ता है, एक सामाजिक अनुसंधानकर्ता को उन परिस्थितियों का अध्ययन करना पड़ेगा जिसके कारण वह सन्यासी बना हो सकता है कि वह अपने जीवन में बहुत भारी अपराधी रहा हो और कोई महान घटना के परिणाम स्वरूप यह सन्यासी बना हो इन सबका अध्ययन करने के लिये अध्ययनकर्ता को न केवल उस व्यक्ति (सन्यासी) से ही सूचनाएं प्राप्त करनी होगी वरन् उसके परिवार के अन्य सदस्यों मित्रों, पड़ोसियों और जानकारों से भी अनेकों सूचनाएं प्राप्त करनी होगी। इतना ही नही उसकी शैक्षिक संस्थाए वक्न्तर, फर्म आदि जिसमें भी उसका सम्बन्ध रहा हो। ये भी सूचनायें प्राप्त की जा सकती है। साथ ही उसकी डायरियां, उसके द्वारा रचित कविताएं, लेख, पुस्तकें एवं उसकी रूचि की फिल्मी पत्रिकायें, उसके दिलचस्प कार्यकलाप आदि से भी अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हो सकती है जो कि उसके व्यक्तिगत जीवन में अध्ययन में सहायता प्रदान करें। संक्षेप में यही व्यक्तिगत अध्ययन है।

विशेषताएं :–

उपरोक्त विवेचन के आधार पर वैयक्तिक अध्ययन पद्धति की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है।

1– समस्या का गहन अध्ययन :–

व्यक्तिगत अध्ययन की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि इस पद्धति के अन्तर्गत समस्या से सम्बंधित इकाई का अति गहन अध्ययन किया जाता है। यह गहन अध्ययन कितने ही लम्बे अरसे तक चल सकता है। साथ ही इसकी सीमा नही है। इसमें इकाई उसके भूतकाल से लेकर वर्तमान काल तक का अध्ययन आवश्यक हो जाता हैं। शायद यह दोहराने की आवश्यकता नही कि इसमें इकाई से सम्बंधित गहन अध्ययन सूचनाये भी एकत्र करने का प्रयत्न किया जाता है।

2– व्यक्तिगत अध्ययन :–

व्यक्तिगत अध्ययन इस पद्धति की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है। इस विशेषता का तात्पर्य यह है कि इस पद्धति के अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता एक ही इकाई को लेकर उस पर जुटा रहता है अर्थात् अध्ययन इकाई, चाहे वह व्यक्ति, संस्था, जाति या कोई समुदाय हो, का उसके व्यक्तिगत स्तर में अलग से सम्पूर्ण अध्ययन किया जाता है यहाँ यह बात अलग है कि उस विशेष इकाई के बारे में क्या अध्ययन किया जाय।

3– सम्पूर्ण अध्ययन :–

व्यक्तिगत अध्ययन किसी भी इकाई का उसकी सम्पूर्णता में अध्ययन करता है दूसरे शब्दों में, यह पद्धति उस विशेष इकाई, जिसका कि अध्ययन करना है, के किसी विशेष पक्ष या पहलू को न लेकर समस्त जीवन को ही अध्ययन का केन्द्र बनाती है। समस्त जीवन या सम्पूर्णता से हमारा तात्पर्य अध्ययन की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक,

धार्मिक, राजनैतिक, प्राणिशास्त्रीय आदि सभी दृष्टियों से सम्पन्न करना है। यद्यपि इसमें समय का महत्व भी नहीं भूलना चाहिए।

4– <u>गुणात्मक अध्ययन, न कि संख्यात्मक</u> :–

व्यक्तिगत अध्ययन की जाति विशेषता, जो कि महत्वपूर्ण नहीं है, यह है कि पद्धति के अन्तर्गत गुणात्मक अध्ययन किया जाता हैं, संख्यात्मक नही है। प्रथम तो ईकाइयों का अध्ययन ही गुणात्मक होता हैं, साथ ही तथ्यों की विवेचना भी संख्याओं के रूप में नहीं होती, न ही निष्कर्ष निकालने में या कुछ व्यक्त करने में संख्याओं का सहारा लिया जाता हैं। इसके बजाय इस पद्धति के अन्तर्गत, वर्णात्मक रूप में जीवन इतिहास तैयार किया जा सकता है।

<u>वैयक्तिक सेवाकार्य का अर्थ</u> :–

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की उत्पत्ति प्रारम्भिक अवस्था, प्रकृति अभ्यास के आधार पर विकास चरण एवं अवस्थाओं तथा विशेषताओं और विभेदीकृत स्वरूप आदि के सम्बन्ध में प्रस्तुत विभिन्न विद्वानों के मतों एवं विचारधाराओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इसके मूल में मानवीय दर्शन तथा कल्याण की भावना निहित हैं। समाज कार्य की यह एक ऐसी प्रणाली है जो कि वैज्ञानिक एवं वैयक्तिक ज्ञानों पर आधारित व्यावसायिक सेवा हैं। इसके द्वारा किसी समस्याग्रस्त व्यक्ति की सेवा तभी की जाती हैं जब वह अपनी समस्या के प्रति जागरूक हो और अपनी अधिकतम क्षमता का प्रयोग करके अपनी–अपनी समस्या का समाधान करने में असमर्थ रहा हों तथा व्यक्ति की सहायता इस प्रकार की जाती है कि वह स्वयं अपनी क्षमताओं का प्रयोग कर विकास कर समस्या का समाधान कर सके अधिक से अधिक विकास कर सकें।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य की विभिन्न लोगों ने परिभाषित किया है :–

टैप्ट के अनुसार :– "सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य समायोजन रहित व्यक्ति की सामजिक चिकित्सा हैं जिसमें इस बात का प्रयास किया जाता है कि उसके व्यक्तिगत, व्यवहार व सामाजिक सम्बन्धों को समझा जाये और उसकी सहायता की जाये जिससे कि वह उच्चतर सामाजिक और वैयक्तिक समायोजन प्राप्त कर सकें।''

(1930)से वे प्रक्रियायें जो व्यक्तियों को सामाजिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों द्वारा निश्चित नीतिक के अनुसार और वैयक्तिक आवश्यकताओं को सामने रखकर सेवा प्रदान करने, आर्थिक सहायता देने या वैयक्तिक परामर्श देने से सम्बद्ध है।

रिचमण्ड मेरी (1915) के अनुसारः– ''सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य विभिन्न व्यक्तियों के लिये उनके साथ मिलकर सहयोग से विभिन्न प्रकार के कार्य करने की एक कला है जिससें एक ही साथ स्वयं अपनी एक समाज की उन्नति की जाती है।''

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि यह एक कला है जिसका उपयोग समस्या सुलझाने में होता हैं। इसमें समस्याओं की भिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न कार्य सम्पादित किये जाते हैं तथा चिकित्सा प्रक्रिया में सेवार्थी का सहयोग आवश्यक होता है। इस परिभाषा में समस्या के प्रकार या स्वरूप का उल्लेख नही था। अतः 1952 में रिचमण्ड ने दूसरी परिभाषा इस सम्बन्ध में प्रस्तुत की और इस परिभाषा के माध्यम से उन्होंने स्पष्ट किया कि सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में समस्या से अभिप्राय व्यक्ति का सामाजिक पर्यावरण से समायोजन की समस्या से है।

स्वीथन, वीवर्स (1949) के अनुसारः– "सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य एक कला है जिसमें मानवीय सम्बन्ध के विज्ञान के ज्ञान और सम्बन्धों में निपुणता का उपयोग इस दृष्टि से किया जाता है कि व्यक्तियों में उसकी योग्यताओं और समुदाय में साधनों को गतिमान किया जायें जिससे सेवार्थी और इसके पर्यावरण के कुछ भाग समस्त भागो के बीच उच्चतर समायोजन स्थापित हो सकें।''

पर्लमैन (1957) के अनुसारः–''सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य एक प्रक्रिया है जिसका प्रयोग कुछ मानव कल्याण संस्थायें करती हैं ताकि व्यक्तियों की सहायता की जायें कि ये सामाजिक कार्यात्मकता की समस्याओं का सामना उच्चतर प्रकार से कर सकें।''

वैयक्तिक सेवा कार्य की विशेषताए :–

उपरोक्त परिभाषाओं से वैयक्तिक सेवा कार्य की विशेषताओं पर निम्नलिखित ढंग से प्रकाश डाला जा सकता है–

1. यह एक कला और इसका उपयोग व्यक्ति से असमायोजनकारी व्यवहार में दूर करने में होता हैं।

2. इस कला को व्यवहार में लाने के लिये विशेष ज्ञान एवं निपुणताओं की आवश्यकता होती हैं।

3. यह कला मानव सम्बन्धों के ज्ञान पर आधारित है।

4. मानव व्यवहार और सम्बन्धों में ज्ञान तथा निपुणता का प्रयोग अत्यन्त सावधानी से करना होता है।

5. इस कला के द्वारा रोवार्थी की शक्तियो की गतिमान किया जाता है, इससे उसके अहं को शक्तिशाली बनाया जाता है तथा समायोजन प्राप्त किया जाता है।

वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली तथा वैयक्तिक सेवा कार्य में अन्तर :–

1– वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत समस्या से सम्बंधित इकाई का अति गहन अध्ययन किया जाता है, जबकि वैयक्तिक सेवा कार्य में इसका उपयोग व्यक्ति के असमायोजनकारी व्यवहार को दूर करने में होता है।

2– वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता एक ही इकाई को लेकर उस पर जुट जाता है जबकि वैयक्तिक सेवा कार्य में इसका उपयोग व्यक्ति के असमायोजनकारी व्यवहार को दूर करने में होता है।

3. वैयक्तिक अध्ययन किसी भी इकाई का उसकी सम्पूर्णता में अध्ययन करता है, लेकिन वैयक्तिक सेवा कार्य मानव सम्बन्धों के ज्ञान पर आधारित है।

4. वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत वर्णात्मक रूप में जीवन–इतिहास तैयार किया जा सकता है, लेकिन वैयक्तिक सेवा कार्य मे इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये समाज के साधनों को गतिमान किया जाता हैं।

अतः उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि अनुसंधान वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली तथा वैयक्तिक सेवा कार्य की प्रमुख प्रणालियों में से है। इसके बिना कार्यकर्ता कोई भी कार्य आसानी से नहीं कर सकता।

बोधगम्य प्रश्न :–

1. वैयक्तिक अध्ययन का अर्थ एवं परिभाषा बताइये? एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए?

2. वैयक्तिक सेवाकार्य का अर्थ बताइए? इसके विभिन्न विशेषताओं को समझाइये?

3. वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली तथा वैयक्तिक सेवाकार्य में अन्तर स्पष्ट कीजिए?

अध्याय–9

निदर्शन पद्धति (SAMPLING METHOD)

निदर्शन का तात्पर्य उस चुनी हुयी इकाई से है जो प्रत्येक दृष्टि से समग्र का प्रतिनिधित्व करती है। सामाजिक अनुसंधान में जब अध्ययन को कुछ प्रतिनिधि इकाईयों के आधार पर करते हैं तो उसे निदर्शन पद्धति कहा जाता है। समय, परिश्रम तथा धन की बात को दृष्टिकोण से यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी है।

निदर्शन की परिभाषा (Definition of Sample):–

निदर्शन की अवधारणा को निम्न परिभाषाओं के सन्दर्भ में स्पष्ट किया जा सकता–

1– प्रेट येट्स यंग के अनुसार – ''निदर्शन को शब्दों की इकाईयों के एक समूह के लिये सुरक्षित होना चाहिये जिसे इस विश्वास से चुना गया हो कि सम्पूर्ण का प्रतिनिधित्व करेगा।''

"The term sample should be reserved for a set of units or portion of an aggregate of material which has been selected in the belief that it will be representative of the whole aggregate."

2– गुर्ड एवं हाट ने निदर्शन को परिभाषित करते हुए लिखा है "एक निदर्शन, जैसा कि नाम से स्पष्ट करता है, सम्पूर्ण समूह का एक अल्पगत प्रतिनिधि है।''

"A smaple as the name applies is a smaller representation of a larger whole"

3– पी.वी. यंग के अनुसार– "एक सांख्यिकीय निदर्शन एवं एक अल्पमत आकार या सम्पूर्ण समूह अथवा योग का अंश है जिससे निदर्शन को लिखा गया है।''

"A statistical sample is a miniature picture or cross section of the entire group or aggregate from which the sample is taken."

बोगार्डस के अनुसार– "निदर्शन पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार इकाईयों के एक समूह में से एक निश्चित प्रतिशत का चुनाव करना है।''

"Sampling is the selection of certain percentage of a group of items according to a pre&determined plan."

इस प्रकार हम परिश्रम और कम खर्च में ही निदर्शन के द्वारा समग्र का अध्ययन किया जाता है और समग्र के उपर लागू किये जा सकने वाले निष्कर्षो की प्राप्ति होती है। अतः संक्षेप में निदर्शन अध्ययन के उद्देश्य से समग्र की विविध इकाईयों में से निर्वाचित वह इकाई, जो समग्र से छोटा है और समग्र की सम्भावित वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करती हैं।

निदर्शन पद्धति का महत्व (Importance of sampling method):–

सामाजिक अनुसंधान में निदर्शन के द्वारा विस्तृत क्षेत्र कर अध्ययन सरल व सुविधाजनक होता है किसी व्यापक समस्या से सम्बंधित तथ्यों के संकलन के लिये निदर्शन प्रणाली सबसे अधिक उपयोगी है। निम्नलिखित तथ्य इसकी उपयोगिता को स्पष्ट करते हैं।

1. प्रतिनिधि इकाईयों का अध्ययन :–

निदर्शन प्रणाली के द्वारा अध्ययन करने का सबसे बडा लाभ यह हैं कि हम सम्पूर्ण विषय–वस्तु मे उन इकाईयों को चुनकर अध्ययन करते है।

2. विस्तृत क्षेत्र का अध्ययन :–

विशाल क्षेत्र के अध्ययन के लिये निदर्शन के प्रयोग से सम्पूर्ण क्षेत्र केवल कुछ चुनी हुयी इकाईयों की संख्या कि ही सीमित हो जाती है। अनुसंधानकर्ता इन इकाईयों का प्रत्येक दृष्टिकोण से अध्ययन कर सकता है।

3. निर्वाचित इकाईयों का दिषद् अध्ययन :–

निदर्शन प्रणाली की एक सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें सम्पूर्ण अध्ययन का निर्वाचित इकाईयों के उपर केन्द्रीकरण हो जाता है। अतः एवं निर्वाचित इकाईयों के उपर समस्त श्रम व समय की समग्र करने से इकाईयों का व्यापक व विषद् अध्ययन होता है।

4. सूचनाओं की प्राप्ति में सुविधा :–

विस्तृत क्षेत्र से सूचनाओं को संकलित करने की अपेक्षा उसके सीमित भाग से सूचना प्राप्त करना अधिक सुविधाजनक हैं। निदर्शन प्रणाली द्वारा अनुसंधानकर्ता को वह सूचना प्राप्त होती है।

5. पर्याप्त परिणामों की प्राप्ति :–

समाजिक अनुसंधान में निदर्शन प्रणाली की सर्वाधिक उपयोगिता इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि निदर्शन प्रणाली के अध्ययन के अनुरूप ही होते है।

निदर्शन पद्धति के लाभ :–

आधुनिक विशाल एवं जटिल समाज की दृष्टि से निदर्शन पद्धति अत्यन्त उपयोगी है। इस पद्धति के प्रमुख लाभ निम्न प्रकार हैं–

1– समय व धन की बचत :–

अध्ययन के प्रतिनिधि इकाईयों तक सीमित करने में कारण, समय व धन की बचत होती है।

2– गहन अध्ययन :–

इस पद्धति में अध्ययन चुनी हुयी इकाईयों तक ही सीमित होती है। अतः गहन अध्ययन की सम्भावना बढ़ जाती है।

3– शुद्ध निष्कर्ष :–

चुनी हुई एकाईयों पर अध्ययन केन्द्रित होने के कारण शुभ और विश्वसनीय निष्कर्ष प्राप्त होते है।

4– प्रशासनिक सुविधा :–

इस पद्धति क्षेत्र में कार्य करने के लिये कम आदमियों की आवश्यकता होती है। अतः अनुसंधान के संगठन में सुविधा होती है।

निर्धन पद्धति के दोष :–

लाभों के साथ–साथ निदर्शन प्रणाली को अनेक दृष्टि से दोषपूर्ण भी है। कुछ प्रमुख दोष निम्न प्रकार है–

1. पक्षपात की संभावना :–

इसमें अध्ययन की इकाईयों का चयन करना आवश्यक है। अतः इस चयन में पक्षपात की सम्भावना रहती है।

2. विशेष ज्ञान की आवश्यकता :–

निदर्शन के चुनाव के लिये विशेष ज्ञान और अनुभव की आवश्यकता होती है।

श्रेष्ठ निदर्शन की विशेषताएं :–

समित साधन, समय व विस्तृत क्षेत्र की दृष्टि से निदर्शन पद्धति अत्यन्त उपयोगी है। इस पद्धति के लाभ तभी सम्भव है, जबकि निदर्शन के अन्दर निम्न विशेषताओं का समावेश हो।

1. समय का प्रतिनिधित्व :–

श्रेष्ठ निदर्शन के लिये आवश्यक है कि इनमें सम्मिलित इकाईयों का समग्र प्रतिनिधित्व करें इसके लिये समग्र की सभी इकाईयों को निदर्शन को निदर्शन के लिए चुने जाने की समान सुविधा प्रदान होनी चाहिए।

2. ईकाइयों की पर्याप्त संख्या :–

निदर्शन के लिये जिन इकाईयों का चयन किया जाये उनकी संख्या पर्याप्त होनी चाहिए। यदि इकाइयों की संख्या कम है तो निदर्शन समय का सही प्रतिनिधित्व नहीं करेगा।

3. पक्षपात रहित चयन :–

निदर्शन की इकाईयों का चयन अनुसंधाकर्ता द्वारा किया जाता है। अतः इस चयन को पक्षपात रहित होना चाहिए।

4. विषय–वस्तु के अनुरूप :–

निदर्शन के लिये जिन इकाइयों को चुना जाय, उन्हें अध्ययन की विषय–वस्तु के अनुरूप होना चाहिये।

5. पूर्व अनुसंधानों के अनुभवों का उपयोग :–

निदर्शन के चयन के लिये अनुसंधानकर्ता को पूर्व अनुसंधानों द्वारा सुलभ अनुभवों का उपयोग करना चाहिए।

इन संख्याओं के द्वारा निदर्शन निकालने की तिथि इस प्रकार है कि माना 100 व्यक्तियों की लिस्ट में से 10 सैम्पल चुनते है तो समग्र के किसी क्रमानुसार 10 अंक चुन लिये जायेगे। समग्र के अंश सूची में अंकों की संख्या उसके स्थान पर तीन हुयी हो सकती है। इसमें इस बात का विशेष ध्यान रखना होता है कि एक अंश का चयन एक ही बार हो।

क्रमांकन प्रणाली :–

इस विधि के अनुसार समस्त इकाईयों को एक विशेष क्रम में लिख लिया जाता है, उसके बाद कहीं से आरम्भ कर, एक निश्चित अन्तर की संख्या को चुन लिया जाता है। उदाहरण के लिये यदि किसी क्षेत्र में 100 परिवार है और उनमें से हमें 10 का चुनाव करना है। अतः हम प्रत्येक दसवें परिवार को अध्ययन के लिये चुन लेगें। इसमें प्रारम्भ किसी भी संख्या से किया जा सकता है। यथा–ण, ज्ञढ़, द्दढ़, घढ़, ४ढ़, टढ़, ठढ़, डढ़, ढढ।

क्रमांकन पद्धति में प्रत्येक इकाई को चुने जाने का समान अवसर दिया जाता हैं संख्या का चुनाव आकस्मिक ढंग से किया जाता है। अतः निष्पक्षता बनी रहती है।

ग्रिड प्रणाली :–

भौगोलिक क्षेत्रों के चुनाव में ग्रिड प्रणाली विशेष उपयोगी होती है। यदि किसी भौगोलिक क्षेत्र में कुछ इकाईयों को अध्ययन के लिये चुने हो, तो इस क्षेत्र का मानचित्र सामने रखा जाता है। उस मानचित्र के ऊपर ग्रिड प्लेट की सेल्युलाइड या किसी अन्य पारदर्षक पदार्थ की बनी होती है, रखी जाती है इस प्लेट में वर्गाकार खाने कटे होते है जिन पर नम्बर लिख दिये जाते है। इस बात को पहले ही तय कर लिया जाता है कि किन, नम्बरों के क्षेत्र को निदर्शन में शामिल करना हैं नम्बरों का निर्णय भी आकस्मिक किया जाता है। इस प्रकार मानचित्र के जिन भागों पर नम्बरों के कटे हुए भाग आते है उन पर निशान लगा लिया जाता है। ये भाग निदर्शन की इकाईयॉ मानी जाती है।

कोड प्रणाली :–

कुछ विद्वान इसे टिकट भी कहते है। यह भी लाटरी निकालने की तरह है। इसमें एक ही प्रकार के कारणों पर समग्र की सभी इकाईयों की संख्या नोट कर ली जाती है तथा कोडों को एक बाक्स या ड्रम में डाल दिया जाता है फिर कोई व्यक्ति ड्रम को लगभग पचास बार हिलाकर उसमें से एक कार्ड निकाल लेता है। इस प्रकार हर बार ड्रम को पचास बार हिलाकर इच्छित इकाइयों का चुनाव कर लिया जाता है और यही इकाइयां निदर्शन कही जाती हैं।

कोटा प्रणाली :–

इसमें समग्र को अनेक वर्गों में विभाजित कर लिया जाता है और फिर तय किया जाता है कि प्रत्येक वर्ग में से कितनी इकाइयों चुननी है। इसमें इकाइयों को स्वयं अनुसंधानकर्ता चुनता है।

दैव निदर्शन प्रणाली के गुण :–

दैव निदर्शन प्रणाली के प्रमुख गुण निम्न है–

1. निष्पक्ष :–

यह प्रणाली अनुसंधानर्ता की अभिगति से मुक्त रहती है। इसमें चुनाव करने वाले सैम्पुल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

2. प्रतिनिधित्वपूर्ण :–

यह प्रतिनिधित्वपूर्ण होती है क्योकि प्रत्येक इकाई को चुनाव का समग्र अवसर मिलता है।

3. सरलता :–

यह प्रणाली सरल हैं। कोई भी व्यक्ति इस प्रणाली का उपयोग कर सकता है।

4. शुद्धता :–

इसमें सम्भावित शुद्धता की मात्रा का पता लगाया जा सकता है।

दैव निदर्शन प्रणाली के दोष :–

इस प्रणाली के प्रमुख दोष निम्न प्रकार हैं–

1. इस प्रणाली में समग्र इकाइयों की सूची अत्यन्त आवश्यक है ।

2. इसमे इकाइयों के चुनाव में अनुसंधानकर्ता का कोई नियंत्रण नही रहता।

3. यदि इकाइयों सजातीयता रहित हो, तो दैव निदर्शन विधि उपयोगी नही होती।

बोधगम्य प्रश्न :–

1. निदर्शन पद्धति क्या है? इसके महत्वों की व्याख्या कीजिए?
2. निदर्शन पद्धति के गुण व दोषों की व्याख्या कीजिए?
3. दैव निदर्शन प्रणाली के गुण व दोष बताइयें?
4. स्तरीय निदर्शन से क्या समझते हैं? इसके गुण व दोष की व्याख्या कीजिए?
5. उद्देश्यपूर्ण निदर्शन को समझाइयें एवं विशेषतायें बताइये?

अध्याय–10

स्तरित निदर्शन

स्तरित निदर्शन से सम्पूर्ण इकाईयों को समान लक्षण के आधार पर वर्गीकरणों में विभाजित किया जाता है। इसके बाद प्रत्येक वर्ग में से उसी अनुपात में इकाईयों का चयन करता है जो अनुपात उस वर्ग और समग्र के बीच है। दूसरे शब्दों में चुनी गयी इकाईयों और वर्ग के बीच नहीं अनुपात होता है जो कि उस वर्ग और समग्र के बीच होता है। इस अनुपात को निश्चित करना आवश्यक होता है। क्योंकि प्रत्येक वर्ग समान नहीं होता। इस प्रकार विभिन्न वर्गों से चुनी गयी इकाईयों समग्र का प्रतिनिधत्व करती हैं। निदर्शन में शामिल इकाईयों का चयन अनुमानित रूप से किया जाता है अतः समग्र के विभिन्न वर्गों की पारस्परिक तुलना की जा सकती है। एकांक के शब्दों में स्तरित निदर्शन अनुसंधानकर्ता को वर्गों की तुलना में और जनसंख्या के गुणों का अन्दाजा लगाने में योग्य बनाता है।

स्तरित निदर्शन के गुण :–

स्तरित निदर्शन प्रणाली के प्रमुख गुण निम्न प्रकार है–

1. इस प्रणाली में अनुसंधानकर्ता का प्रतिदर्श के चुनाव के उपर अधिक नियंत्रण होता है और प्रत्येक वर्ग की इकाईयों को प्रतिनिधित्व का अवसर मिलता है।

2. इसमें थोड़ी सी इकाईयों के चयन के द्वारा प्रतिनिधि प्रतिदर्श व निर्माण हो जाता है।

3– इसमे इकाईयों का प्रतिस्थापन अत्यधिक कम हो जाता है। यदि किसी वर्ग की किसी इकाई में सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता, तो उसके स्थान पर उसी वर्ग के दूसरे व्यक्ति को चुना जा सकता है।

स्तरित निदर्शन प्रणाली के दोष :–

1. स्तरित निदर्शन प्रणाली में यदि वर्गों का निर्माण उचित नहीं हुआ तो सैम्पुल में अभिमति हो सकती है। इसमें किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व अधिक हो सकता है और किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व कम।

2. यदि विभिन्न वर्गों के आधार पर भिन्नता में तो प्रतिदर्श में आनुपातिक प्रतिनिधितव नहीं हो पाता।

3. यदि वर्गों का निर्माण असमानुपातिक हुआ है तो बाद में मार का उपयोग करना पड़ता है। इससे व्यक्तिगत अभिमति की सम्भावना बढ़ जाती है।

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन :–

निदर्शन की इस प्रणाली में इस आधारभूत मान्यता को स्वीकार किया जाता है कि अनुसंधानकर्ता समग्र के समस्त लक्षणों से परिचित है। दैव निदर्शन प्रणाली के अन्दर जहाँ अनुसंधानकर्ता, समग्र से अपरिचित रहता है, वहा उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में अनुसंधान यह

निश्चित करता है कि समग्र के अन्दर कौन इकाई पूर्णतया प्रतिनिधि है। इस प्रकार अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर अनुसंधानकर्ता प्रतिनिधि इकाईयों प्रवरण करता है। इस प्रणाली के लिये आवश्यक है कि अनुसंधानकर्ता समग्र से अवगत हो और साथ ही साथ अनुसंधानकर्ता का एक पूर्व निर्धारित उद्देश्य हो।

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन की विशेषताएं :–

इस निदर्शन की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार है :–

1. इस प्रणाली की यह आधारभूत मान्यता है कि निदर्शन के प्रवरण से पूर्व निदर्शन का निर्वाचक, समग्र के सभी लक्षणों से पूर्णतया परिचित है।

2. इसके अतिरिक्त यह स्वीकार किया जाता है कि निर्वाचक का निदर्शन के प्रवरण के पीछे विशिष्ट उद्देश्य नहीं है।

3. इसमें निर्वाचक अपने ज्ञान व उद्देश्य के अनुसार केवल उन इकाईयों को निदर्शन में सम्मिलित करता है, जिन्हें यह उपयुक्त एवं समग्र का प्रतिनिधि समझता है।

उपर्युक्त लक्षणों से यह स्पष्ट है कि इस प्रणाली के अन्तर्गत समग्र इकाई का निदर्शन में सम्मिलित होना, सम्भावना पर अवलंम्बित नहीं है, बल्कि निर्वाचनकर्ता वैयक्तिक निष्कर्षों पर निर्भर है। अतएवं प्रवरण में निर्वाचनकर्ता पक्षपात किये जाने व उसकी अभिमति के प्रविष्ट होने की सम्भावना विशेषताओं के फलस्वरूप भी यही इस प्रणाली की सबसे बड़ी दुर्बलता है।

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के गुण :–

इसके प्रमुख गुण निम्न प्रकार हैं–

1– यदि सैम्पल के चुनाव मे अभिमति को दूर करने की चेष्टा की गयी है तो छोटा सैम्पल भी प्रतिनिधिपूर्ण हो जाता है।

2– इसमें छोटी सी इकाईयों में चुनाव में अनुसंधान का उद्देश्य पूरा हो जाता है।

3–इस प्रणाली मे उन इकाईयो को अवश्य चुना जाता है, जो अध्ययन की दृष्टि से अधिक उपयोगी होती है।

दोष :–

सेलेडकोर ने इस प्रणाली में तीन दोष बताएं हैं–

1. इस प्रणाली के समग्र का ज्ञान पहले से होना चाहिए जो कि सम्भव नहीं होता।

2. इसमे इकाईयो के चुनाव पर लगाये जाने वाले नियंत्रण प्रायः प्रभावहीन होते है।

3. इसमे सैम्पल सम्बन्धी अशुद्धता का अनुमान लगाना कठिन होता है।

निर्धारित निदर्शन :–

निदर्शन की इस प्रणाली में विभिन्न क्षेत्रों में से किसी एक का निदर्शन के लिए निर्वाचन किया जाता है। निर्वाचन के अन्तर्गत फिर उस क्षेत्र में आवास करने वाले समस्त व्यक्तियों का अध्ययन किया जाता हैं। विभिन्न क्षेत्रों में से किसी एक क्षेत्र का निर्वाचन अनुसंधानकर्ता की इच्छा पर निर्भर करता है।

निर्धारित निदर्शन के चरण :–

निर्धारित निदर्शन के चरण के प्रयोग प्रायः बाजार तथा निर्वाचनो के सर्वेक्षण में किया जाता है। निदर्शन प्रणाली के तीन प्रमुख चरण हैं–

1. ज्ञान लक्षणों के आधार पर जनसंख्या का विभाजन।

2. प्रत्येक विभाजन के अन्तर्गत सम्मिलित जनसंख्या का मूल्यांकन।

3. प्रत्येक साक्षात्कारकर्ता अथवा अवलोकनकर्ता के लिये अध्ययन किये जाने वाले व्यक्तियों या वर्गों के परिणाम का निर्धारण।

बोधगम्य प्रश्न :–

1. स्तरित निदर्शन का अर्थ, गुण एवं दोष बताइयें?

2. उद्देश्यपूर्ण निदर्शन से आप क्या समझतें है उसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए?

3. निर्धारित निदर्शन एवं चरण की विवेचना कीजिए।

समाजकल्याण सेवाओं का लागत लाभ विश्लेषण
Cost and benefit analysis of social welfare services

लागत लाभ विश्लेषण (Cost Benefit Analysis)

लागत लाभ विश्लेषण की मान्यता है कि वास्तविक आय और वास्तविक व्यय किसी सेवाओं से होने वाले सामजिक लाभों और सामजिक लागतों को स्पष्ट नहीं कर पाते। किन्तु यह मानदण्ड इस बात को स्वीकार करता है कि लाभों और लागतों के बीच के अन्तर को दूर किया जा सकता है और इसलिये परियोजना से प्राप्त होने वाले सामाजिक लाभों का पता लगाया जा सकता है।

इस मानदण्ड के अन्तर्गत परियोजना की लागत व उसके सम्भावित लाभों की परस्पर तुलना की जाती है। अतः इस दृष्टि से इस विधि के अन्तर्गत लाभ एवं लागतों का परिणाम, तुलना और उनके मूल्यांकन को सम्मिलित किया जाता है। दूसरे शब्दों में निहित लागतों के मुकाबिले में उसके प्रतिफलों को तोलना। लागत लाभ विश्लेषण के लिए

सर्वप्रथम लागतों और लाभों का आगणन किया जाता है, फिर उनका मूल्यांकन किया जाता है और अन्त में विभिन्न परियोजनाओं के सम्बन्ध में उनकी तुलना कर ली जाती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि परियोजना का चुनाव उसके लागत–लाभ अनुपात की मात्रा पर पर निर्भर करता है। अगर परियोजना के लाभ उसकी लागत से अधिक है तो परियोजना का चुनाव आर्थिक होगा अन्यथा अनार्थिक माना जायेगा। अधिक स्पष्टता के लिए अगर किसी परियोजना के लाभ–लागत अनुपात को B/C द्वारा व्यक्त किया जाये तो ऐसी स्थिति में–

(1) यदि B/C = 1 तो परियोजना सीमान्त होती है अर्थात् केवल अपनी लागत को पूरी कर रही होती है।

(2) यदि B / C> 1 तो लाभ लागतों से अधिक होते है परियोजना को चालू रखना लाभदायक होता है।

(3) यदि B/C < 1 तो लाभ लागतो से कम है तथा परियोजना को लागू नहीं किया जा सकता।

सार रूप में लाभ–लागत अनुपात **(B/C)** जितना अधिक होगा अथवा लागत लाभ अनुपात **(C/B)** जितना कम होगा परियोजना को उतनी ही अधिक प्राथमिकता दी जायेगी।

काल क्षितिज की कठिनाई– उपरोक्त सूत्र (B/C) की प्रमुख कठिराई यह है कि यह परियोजना के काल क्षितिज (Time Horizen) को ध्यान में नहीं रखता। वास्तव में 'भविष्य' के लाभ एवं लागतें 'वर्तमान' के लाभ एवं लागतों के बराबर नहीं लिये जा सकते। इसलिये यह जरूरी हो जाता है कि भविष्य के लाभों एवं लागतों का बट्टा (discounting) काटा जाये। इसके लिये यद्यपि अनेक कसौटियाँ बनाई गयी है, लेकिन निम्न दो कसौटियाँ ही सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है।

(अ) वर्तमान मूल्य कसौटी (The Present Value Criterion)– इसको लाभों की शुद्ध वर्तमान कसौटी भी कहतें हैं। सूत्र रूप में इसको निम्न ढगं से व्यक्त किया जाता है–

लाभों की वर्तमान मूल्य कसौटी = लाभों का सकल वर्तमान मूल्य–लागतों का सकल वर्तमान मूल्य

सूत्रानुसार एक परियोजना सामाजिक दृष्टि से तभी लाभदायक होती है जब लाभों का शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य से अधिक हो। चूँकि लाभ और लागतों के अन्तर को अधिकतम करने लिये इस कसौटी में बट्टा की सामाजिक दर चाहिये जिसके अनुसार लाभों का सूत्र इस प्रकार होगा–

$\{B_1/(1+i)+B_2/(1+i)2+.....+B_n/(1+i)^n\} - \{C_1/(1+i) + C_2/(1+i)^2 + ... + C_n/(1+i)^n\}$

यहॉ, B_1, B_2.....Bn सकल वर्तमान लाभों की हौर C_1, C_2.....C_n सकल लागतों की 1, 2....n वर्षो में श्रृंखलाऐं (series) है और 'i' बट्टा की वार्षिक सामाजिक दर (social rate of discount) है।

परियोजना के चयन का नियम– उपरोक्त सूत्र के अनुसार केल उन्हीं परियोजनाओं का चयन किया जाना चाहिये जिनमें (i) लाभों का सूत्र वर्तमान मूल्य लागतों के सूत्र वर्तमान मूल्य से अधिक है, और जहाँ (ii) लाभों के वर्तमान मूल्य का लागतों के वर्तमान मूल्य से अनुपात 1 से अधिक हैं।

(ब) प्रतिफल की आन्तरिक दर कसौटी (The Internal rate of Return Criterion)– इस कसौटी का सम्बन्ध परियोजना के लाभों तथा लागतों के प्रवाहों में अन्तर्निहित प्रतिफल की प्रतिशत दर से है। प्रतिफल की आन्तरिक दर (r) के आगधन का सूत्र इस प्रकार है–

$B_1–C_1/(1+r)+B_2–C_2/(1+r)^2+-----+B_n-C/(1+r)^n=0$

लाभों के प्रकार (Types of Benefits)

चूँकि परियोजना मूल्यांकन का वास्तविक आधार उस परियोजना से प्राप्त होने वाले लाभ हैं इसलिए आवश्यक हो जाता है कि इनका समुचित अध्ययन कर लिया जाये। लाभ का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया जाता है–

लाभ का वर्गीकरण

वास्तविक (Real)	अवास्तविक (Nominal)
मुख्य (Primary)	गौण (Secondary)
मौद्रिक (Tangible)	अमौद्रिक (Intangible)

1. वास्तविक एवं अवास्तविक लाभ (Real and Nominal Benefits) :–

लागत–लाभ विश्लेषण करते समय हमारा सम्बन्ध मुख्य रूप से वास्तविक लाभों से ही होता हैं। एक नदी घटी योजना के विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत कृषकों को उपलब्ध अतिरिक्त सिंचाई सुविधाओं का लाभ, वास्तविक लाभ माना जायेगा। अगर इन सुविधाओं को प्राप्त करने वालों पर विशेष विकास– कर (betterment levy) लगा दिया जाय तो लाभ अवास्तविक अर्थात् नाम मात्र को रह जायेगे। ध्यान रहे, सिंचाई की सुविधाओं के अतिरिक्त इस विकास कार्य – क्रम से अगर भूमि की उत्पादकता बढ़ जाने पर लोगों की वास्तविक आय में वृद्धि होती है तो उसे 'वास्तविक लाभ' की संज्ञा दी जायेगी ।

2. मुख्य एवं गौण लाभ (Primary and Secondary Benefits) :–

मुख्य लाभ वे लाभ होते है जो किसी परियोजना से प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ नदी–घाटी योजना के विकास के फलस्वरूप बाढ़ नियन्त्रण, सिंचित क्षेत्र में वृद्धि, जल यातायात का विकास, मत्स्य–उद्योग की सम्भावना तथा बिजली का उत्पादन आदि मुख्य लाभ माने जायेगे। इसके विपरीत गौण लाभ प्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न न होकर सहायक रूप में उत्पन्न होतें है। भाखड़ा–नांगल योजना के विकास के फलस्वरूप रोजगार सुविधाओं में वृद्धि, रेलवे लाइनों का अधिक मात्रा में बिछाया जाना तथा नांगल शहर की

स्थापना और एक भ्रमणीय स्थल के रूप में उसका उपयोग सही अर्थो में, गौण अथवा सहायक लाभ माने जायेंगे।

3. मौद्रिक एवं अमौद्रिक लाभ (Tangible and Intangible Benefits) :–

मौद्रिक लाभ वे लाभ होते हैं जिन्हें मुद्रा के माध्यम से मापा जा सकता है, जैसे भाखड़ा डैम से प्राप्त होने वाले लाभ भौतिक हैं, क्योंकि इन्हें मुद्रा की सहायता से नापा जा सकता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे लाभ होतें हैं जिन्हे मौद्रिक रूप दिया ही नहीं जा सकता है जैसे भाखड़ा–नांगल का दृश्यात्मक सौन्दर्य आनन्द मूलक तो है लेकिन मुद्रा मूलक नहीं। इसी प्रकार एक सार्वजनिक पार्क से प्राप्त होने वाले लाभों का मौद्रिक रूप में मूल्यांकन करना सम्भव नहीं हैं।

लागतों के प्रकार (Types of Costs) :–

लाभ की भाँति लागतों का वर्गीकरण भी दो तरीके से किया जाता है–

(अ) वास्तविक एवं अवास्तविक लागत (Real and Nominal) :–

अगर एक क्षेत्र के विकास के लिये उसके नागरिकों से ही विशेष कर के रूप में धन प्राप्त किया जाये जिससे कि सड़कों आदि का निर्माण हो सके तो यह अवास्तविक लागत होगी। इसके विपरीत अगर उस क्षेत्र के निवासियों द्वारा सड़क निर्माण के लिये श्रमदान किया जाता है, तो इसे वास्तविक लागत कहेंगे।

(ब) मुख्य एवं सहायक लागत (Primary and Secondary Cost) :–

लागत–लाभ विश्लेषण में मुख्य लागत का अपना एक विशेष महत्व है। किसी परियोजना के निर्माण व संचालन करने के लिए जो धन व्यय किया जाता है उसे मुख्य लागत कहतें हैं। इसके विपरीत उसी परियोजना पर काम करने वाले श्रमिकों के लिए विभिन्न प्रकार की परोक्ष सुविधायें, जैसे स्कूल, मकान तथा अस्पताल आदि के निर्माण के लिए किया जाने वाला व्यय, सहायक लागत के अन्तर्गत सम्मिलित किया जायेगा।

लागतों की गणना करना (Computing costs) :–

(i) सर्वप्रथम वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन व उपयोग की मात्रा सम्बन्धी सर्मक प्राप्त किये जाते है।

(ii) तब इन वस्तुओं का मौद्रिक मूल्य ज्ञात किया जाता हैं।

(iii) मौद्रिक मूल्यों की विभिन्न बाजार मूल्यों से तुलना की जाती है ताकि मुद्रा–स्फीतिक अथवा मुद्रा–विस्फीतिक दबाव का अनुमान हो सके।

(iv) उत्पादित पूँजीगत वस्तुओं के बारे में यह जानकारी की जाती है कि वे कितने काल तक कार्यशील बनी रहेगी।

(v) अन्त में वार्षिक लागत निकालने के लिए परियोजना की कुल लागत की, पूँजीगत समपत्तियों की सम्भावित काल तक कार्य करने की क्षमता द्वारा विभाजित कर दिया जाता है।

(vi) ठीक इसी प्रकार वार्षिक लाभ निकालने के लिए किसी परियोजना से प्राप्त होने वाले प्रत्यक्ष लाभों का मौद्रिक मूल्य निकाला जाता है और उसमें से सम्बन्धित वार्षिक लागत घटा दी जाती है।

इसी प्रकार परियोजना मूल्यॉकन के लिए हमें केवल मुख्य लाभ व मुख्य लागत की गणना करनी होती है। अगर कुल लागत से अधिक होते हैं तो परियोजना को छांट लिया जाता है अन्यथा नहीं।

अध्याय–11

केन्द्रिय प्रवृत्ति के माप
(Measures of Central Tendency)

केन्द्रिय प्रवृति के द्वारा हम जान सकते हैं कि विभिन्न चरों की आवृति क्या है। जो समस्त जन–संख्या का प्रतिनिधत्व करते है इस प्रकार के केन्द्रिय प्रवृति के माप को सांख्यकी में औसत (Averages) कहते हैं तथा ये मूल्य जो हमें समूह की योग्यता को एक ही अंक में बतला देते हैं, केन्द्रिय प्रवृत्ति के मापक कहे जाते हैं। औसत के द्वारा प्रदत्त को सेक्षिप्त किया जा सकता है।

डॉ. बाउले के अनुसार– ''सांख्यकी को वास्तव में औसतों का विज्ञान कहा जा सकता है।'' (Statistics may rightly be called the science of average)

यूल और केन्डाल (Yule & Kendall) के अनुसार–''औसत से अभिप्राय किसी आवृति वितरण की स्थिति या पद के मापों से है।''

मोरोने (Moroney) महोदय के अनुसार– ''औसत का उद्देश्य उन व्यक्तिगत मूल्यों के समूह का सुगम एवं संक्षिप्त रूप में प्रतिनिधित्व करना है जिससे व्यक्ति बिना आकस्मिक और असार्थ विभिन्नताओं में फसे हुये, किसी समूह के व्यक्तिगत मूल्यों की सामान्य आवृति को समझ ले।''

गिलफर्ड (Guilford) महोदय के अनुसार– ''विभिन्न निरीक्षणों के केन्द्रिय मूल्य की ओर संकेत करने वाली संख्या को औसत कहते है। ''An average is a numher indicating the central value of observations or individuals.

इन उपर्युक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है कि औसत एक ऐसी संख्या है जो एक समूह का प्रतिनिधित्व करती है।

उद्देश्य :–

(1) किसी प्रतिदर्श द्वारा प्राप्त प्रदत्तों का संक्षिप्त विवरण देने के लिये औसत का प्रयोग किया जाता है। किसी समूह विशेष के लिये एक ही अंक के प्रतिनिधित्व करने से यह एक अंक बहुत ही सार्थक हो जाता है ऐसा तभी संभव है जब सांख्यकीय औसत का प्रयोग किया जाय।

(2) सांख्यकीय औसत अप्रत्यक्ष रूप से तथा परिशुद्धता से उस जनसंख्या का वर्णन करता है जिससे प्रतिदर्श का चयन किया गया है।

(3) औसतों की सहायता से दो या दो से अधिक समूहों की तुलना अपेक्षाकृत सरल हो जाता है।

(4) औसत सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व करते है।

(5) दो विभिन्न श्रृंखलाओं के सम्बन्ध को आँसत के द्वारा ही तुलना की जा सकती है।

विशेषतायें :–

(1) इसे दृढ़तापूर्वक परिभाषित होना चाहिये– यदि औसत को निरीक्षक के अनुमान के सहारे छोड़ दिया जाता है और यदि वह निश्चित और स्थिर मूल्य नही है तो यह अंक किसी श्रृंखला का प्रतिनिधित्व नही कर सकता। अनुसंधानकर्ता का पक्षपात औसत के मूल्य को बहुत प्रभावित करता है। यदि औसत को दृढ़ता से परिभाषित कर दिया गया है तो इस तरह की कोई अस्थिरता (Instability) औसत मूल्य जायेगी और यह अंक हमेशा एक निश्चित अंक होगा।

(2) इसे श्रृंखला के समस्त निरीक्षणों पर आधारित होना चाहिये– यदि गणना करतें समय श्रृंखला पदों को छोड़ दिया गया है तो यह औसत उस श्रृंखला का प्रतिनिधित्व नही कर सकेगा।

(3) इसे बीजगणितय प्रयोगों के अनुकूल होना चाहिये– यदि औसत में यह गुण नही पाया जाता है तो इसका प्रयोग बहूत ही सीमित हो जायेगा औसत को गणित के नियमों के अनुकूल होना चाहिये ताकि आगे गणित और बीजगणित को प्रयोग किया जाये।

(4) इसकी गणना सरल और बोधगम्य होनी चाहिये– यदि औसत की गणा में कठिन गणितीय प्रक्रियाओं का प्रयोग कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित होकर रह जायेगा । ऐसा औसत लोकप्रिय नही हो सकता इसके लिये यह आवश्यक है कि बहुत अधिक अमूर्त (Abstract) या गणितीय नही होना चाहिये इसके अतिरिक्त औसत के गुण इस प्रकार के होने चाहिये कि उन्हें सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति समझ सके।

(5) इसे निदर्शन अस्थिरता से नही प्रभावित होना चाहिये– यदि किसी क्षेत्र विशेष में दो स्वतंत्र प्रतिदर्शो को अध्ययन के लिये चूना गया है, तो औसत अवश्य प्राप्त होगा लेकिन इनमें भौतिक अन्तर नही विद्यमान होगा और जब हम दो विभिन्न प्रतिदर्शों को लेते है तो उनमें अन्तर अवश्य पाया जायेगा। किन्ही परिस्थितियों में यह अंतर बहुत अधिक हो सकता और कभी कम जिन औसतों में यह अंतर कम पाया जाता है उनमें निदर्शन की अस्थिरता पाई जाती है। लेकिन जिन औसत मूल्यों में यह अन्तर अधिक होता है वह औसत मूल्य कम अन्तर वाले औसत मूल्य से अधिक होता है।

(6) औसत की गणना करने वाले समूह को समजातीय होना चाहिये– जिस प्रदत्त के पदों से औसत की गणना करनी है उसे समजातीय होना चाहिये ऐसा न होने पर भ्रामक निष्कर्ष प्राप्त होंगे।

(7) **औसत की यह विशेषता होनी चाहिये**– कि वह निरपेक्ष (absolute) संख्या हो अर्थात औसत प्रतिशत या किसी अन्य सापेक्ष रीति से न प्रस्तुत किया गया हो।

साख्यिकीय की श्रृंखलाओं में तीन भिन्नता होनी चाहिये :–

(1) वे परिवर्म्य के उन मूल्यों में भिन्न हो सकते है जिनके इर्द–गिर्द अधिकांश पदों का गुच्छन होता है।

(They may differ in the values of the variables round which most of the items clusten-Elhans.)

(2) वे केन्द्रिय मूल्यों के आस–पास पदो के फैलाव की मात्रा के अनुपात में भिन्न हो सकते है।

(They may differ in the extent to which items are dispersed round the centralvalue.)

(3) वे सामान्य वितरण से जितने परे हो, उनमे भिन्नता उतनी ही होगी।

(They may differ in the eÛtent of departure from a normal distribution.)

तीनों भिन्नताओं के अध्ययन के लिये तीन मापनों का प्रयोग किया जाता है। वे क्रमशः इस प्रकार हैं–

(1) केन्द्रिय प्रवृत्तियों के माप।

(2) विचलन (Dispersion) के माप।

(3) विषमता (Skewness) और प्रथुपीर्षस्थ (Kutosis) या ककुदता

यहाँ हम केन्द्रिय प्रवृत्ति के मापनों के बारें में अध्ययन करेंगे। औसत कई प्रकार के होते है–

(1) अंकगणितीय मध्यमान (Arthmetic Mean)

(2) मध्यांक (Mediun)

(3) बहुलांक (Mode)

(4) ज्यामितीय औसत (Geometric Mean)

(5) हरात्मक औसत (Harmonic Mean)

(6) वर्ग करणी औसत (Quadratic Mean)

इन सभी प्रकार के औसतों में महत्वपूर्ण औसत अंक गणितीय मध्यमान, मध्यांक और बहुलांक है। ज्यामितीय औसत और हरात्मक औसत का स्थान इनके बाद है लीकिन वर्गकरणी औसत का महत्व बहुत कम है।

अंकगणितीय मध्यमान

अंकगणितीय मध्यमान को सामन्यतया औसत कहा जाता है। मध्यमान श्रृंखला का वह मूल्य है जो श्रेणी के विभिन्न पदो के मूल्य के योग को उनकी संख्या से विभाजित करने पर प्राप्त होता है। इसमें समस्त निरीक्षणों का योग कर लिया जाता है और योग को मापों की संख्या से भाग दे दिया जाता है। भजनफल ही मध्यमान कहलाता है। जैसे– 10, 20,

और 30 का मध्यमान = 10+20+30 / 3=20 हुआ। गणित मध्यमान का यह सरल तरीका है।

अव्यवस्थित प्रदत्तों का मध्यमान ज्ञात करना

निम्नलिखित पदों का साधारण गणितीय मध्यमान की गणना कीजिये–

41, 40, 35, 40, 37, 39, 34, 36, 38, 42.

मध्यमान (Mean) =$\sum X/N$ ..... (4)

यहाँ $\sum X$= अंकों का योग

N= पदों की संख्या

= 382 / 10

= 38.2 श्रृंखला अंक गणितीय मध्यमान।

व्यस्थित प्रदत्तों का मध्यमान ज्ञात करना

व्यवस्थित प्रदत्तों का मध्यमान ज्ञात करने की विधियों है–

(1) दीर्घ विधि (Long Method)

(2) संक्षिप्त विधि (Short Method)

(1) दीर्घ विधि (Long Method)

दीर्घ विधि द्वारा मध्यमान ज्ञात करने का सूत्र = $\sum fX/N$ ..... (5)

तालिका 4:1 दीर्घ विधि द्वारा मध्यमान की गणना– यहाँ fX = मध्य बिन्दुओं और आवृतियों का गुणनफल$\sum fX = X$ और f के गुणनफल का योग।

N= योग

c.i.	f	x (मध्य बिन्दु)	fx
55-59	3	57	171
50-54	3	52	156
45=49	4	47	188
40-44	5	42	210
35-39	6	37	222
30-34	5	32	160
25-29	5	27	135
20-24	4	22	88
15-19	2	17	34

10-14	1	12	12
	N=38		∑fx=1376

M = ∑fx/N

= 1376/38 = 36.21 मध्यमान

तलिका 4 : 2 दीर्घ विधि द्वारा मध्यमान ज्ञात करना

c.i.	f	x (मध्य बिन्दु)	fx
75.0-76.9	3	75.95	227.85
77.0-78.9	23	77.95	1792.85
79.0-80.9	52	79.95	4157.40
81.0-82.9	61	81.95	4998.95
83.0-84.9	74	83.95	6212.30
85.0-86.9	61	88.95	5242.95
87.0-88.9	53	87.95	4661.35
89.0-90.9	35	89.95	3148.25
91.0-92.9	23	91.95	2114.85
93.0-94.9	15	93.95	1409.25
95.0-96.9	7	95.95	671.65
97.0-98.9	2	97.95	195.90
	N=409		**∑fx=34833.55**

M = ∑fx/N

= 34833.55/409 = 85.17 मध्यमान

दीर्घ विधि द्वारा मध्यमान ज्ञात करने की प्रक्रिया :—

इस विधि में सबसे पहले प्राप्तांको को व्यवस्थित कर लिया जाता है इस प्रकार जब वर्गान्तरों और पहले आवृतियों के स्तम्भ तैयार हो जाते है तो सभी वर्गान्तरों का मध्य बिन्दु ज्ञात करने के लिये वर्गान्तर के दोनो सीमाओं को जोड़कर दो से भाग दिया जाता है और भजनफल को x (मध्य बिन्दु) के स्तम्भ में लिख दिया जाता है। गुणनफल को fx के स्तम्भ में लिख दिया जाता है। सभी fxका योग ही ∑fx होगा। ∑fx को आवृतियों के योग से विभाजित कर देने पर प्राप्त भजनफल मध्यमान होगा।

(2) संक्षिप्त विधि

अव्यवस्थित प्रदत्तों का संक्षिप्त विधि द्वारा गध्यमान ज्ञात करना—

उदाहरण— निम्नलिखित अव्यवस्थित प्रदत्तों का मध्यमान संक्षिप्त विधि द्वारा ज्ञात कीजिये—

	प्राप्तांक	विचलन (X or D)
	6	+2
	5	+1
	4	0

कल्पित माध्य–	4	0 = +3
	3	-1
	2	-2
	2	-2
	2	-2
	1	-3
	1	-3 =-13

$\sum$ fx=-10

M = A.M. + ($\sum$fx/N) ..... (6)

= 4 (-10/10)

= 4-1 = 3 मध्यमान

व्यवस्थित प्रदत्त का संक्षिप्त विधि द्वारा मध्यमान ज्ञात करना –

संक्षिप्त विधि द्वारा मध्यमान ज्ञात करने का सूत्र

M = A.M. + ($\sum$fx/N) xi ..... (7)

यहाँ A.M.= उस वर्गान्तर का मध्य बिन्दु जिसमें कल्पितमध्यमान पड़ रहा है।

$\sum$fx=आवृतियों तथा विचलन के गुणनफल का योग।

I = वर्ग विस्तार

N = पदों की संख्या

तालिका 4 : 3 संक्षिप्त विधि द्वारा मध्मान की गणना –

c.i.	f	X or D	fx
55.59	3	4	12
50.59	3	3	9
45.49	4	2	8
40.44	5	1	5=34
A.M 35.39	**6**	0	0
30.34	5	-1	-5
25.29	5	-2	-10
20.24	4	-3	-12
15.19	2	-4	-8
10.14	1	-5	-5=40
	N=38		$\sum$fx=-6

M = A.M. + ($\sum$fx/N) xi

= 37 + (-6/38) x 5 = 37 - 79

= 36.21 मध्यमान

तालिका 4:4 संक्षिप्त विधि द्वारा मध्यमान की संख्या –

c.i.	f	X or D	fx
75.0-76.9	3	-4	-12
77.0-78.9	23	-2	-69
79.0-80.9	42	-2	-104
81.0-82.9	61	-1	-61=-246
A.M. 83.0-84.9	**71**	0	0
85.0-86.9	61	+1	61
87.0-88.9	53	+2	106
89.0-90.9	35	+3	105
91.0-92.9	23	+4	92
93.0-94.9	15	+5	75
95.0-96.9	7	+6	42
97.0-98.9	2	+7	14 = +495
	N=409		**∑fx=249**

M = A.M. + (∑fx/N) xi

= 83.95 + 249/409 x 2

= 83.95 + 1.218

= 85.17 मध्यमान

यदि हम वर्गान्तरों के आधार के अनुसार ही वह दूरी विचलनों में रखें तो इस सूत्र का अनुसरण करना होगा–

M = A.M. + (∑fx/N) ..... (-)

इस सूत्र के लिये निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत है।

तालिका 4:5 संक्षिप्त विधि द्वारा मध्यमान गणना –

c.i.	f	X	fx
75.0-77.9	3	-8	-24
77.0-78.9	23	-6	-138
79.0-80.9	52	-4	-208
81.0-82.9	61	-2	
A.M. 83.9-84.9	**71**	0	-122=-492
85.0-86.9	61	+2	0
87.0-88.9	53	+4	+122
89.0-90.9	35	+6	+212
91.0-92.9	23	+8	+210
93.0-94.9	15	+10	+184

95.0-96.9	7	+12	+150
97.0-98.9	2	+14	+84
			+28=+990
	N=409		**∑fx=498**

M = A.M. + (∑fx/N)

= 83.95 + 498/409

= 83.95 + 1.218

= 85.17 मध्यमान

सम्मिलित समूहों का मध्यमान

जब हमारे पास दो या दो अधिक प्रतिदर्शों के मध्यमान उपलब्ध होते है और हमें सम्मिलित मध्यमान ज्ञात करने की आवश्यकता होती है, तो अधोलिखित सूत्र का प्रयोग करते है।

$$M.Com. = \frac{N_1M_2 + N_1 + \cdots \ldots \ldots \ldots \ldots N_nM_n}{N_1N_2 + \cdots \ldots \ldots \ldots \ldots N_n} \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots (8)$$

यहाँ–

N_1= प्रथम प्रतिदर्श की संख्या

N_2=द्वितीय प्रतिदर्श की संख्या

M_1=प्रथम प्रतिदर्श का मध्यमान

M_2=द्वितीय प्रतिदर्श का मध्यमान

उदाहरण– निम्नलिखित प्रदत्तों के द्वारा संयुक्त मध्यमान ज्ञात कीजिये।

कक्षा	मनोविज्ञान के छात्रों के भार का मध्यमान	छात्रों की संख्या
बी.ए. प्रथम वर्ष	50 किग्रा	200
बी.ए. द्वितीय वर्ष	52 किग्रा	200
एम.ए. प्रथम वर्ष	55 किग्रा	100
एम.ए. द्वितीय वर्ष	60 किग्रा	100

$$M.Com. = \frac{N_1M_1 + N_2M_2 + N_3M_3 + N_4M_4}{N_1 + N_2 + N_3N_4}$$

$$= \frac{200x50 + 200x52 + 100x55 + 100x60}{200 + 200 + 100 + 100}$$

$= 53.17$ संयुक्त मध्यमान

संक्षिप्त विधि द्वारा मध्यमान ज्ञात करने की प्रक्रिया

(1) संक्षिप्त विधि मध्यमान ज्ञात करने के लिये श्रृंखला के किसी पद या वर्गान्तर में कल्पित मध्यमान ज्ञातकर लेंगे।

(2) उस वर्गान्तर के दोनों सीमाओं को जोड़कर कर दो से भाग देकर उसका मध्य बिन्दु ज्ञात कर लें। अच्छा यही है कि कल्पित मध्यमान के लिये बीच का वर्गान्तर लिया जाये ताकि गणना में सुविधा हो। वैसे हम किसी भी वर्गान्तर में मध्यमान की कल्पना कर लें तो परिणाम में संगति ही होगी इसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि जिस वर्गान्तर में सबसे अधिक आवृतियाँ हो उसी में मध्यमान की कल्पना की जाये।

(3) विचलन ज्ञात करने की दो विधियां है जिनके लिये तालिका 4:4 और तालिका 4:5 को देख सकते हैं। पहली विधि यह है कि कल्पित मध्यमान वाले वर्गान्तर का मध्य बिन्दु ज्ञात करते हैं। यही कल्पित मध्यमान होता है। जब हम कल्पित मध्यमान से और दूसरे वर्गान्तरों के मध्य बिन्दुओं का विचलन देखते हैं, तों जो दूरी दारे मध्य बिन्दुओं मे होती है या वर्गान्तरों का जो आकार होता है उसी संख्या से विचलन के स्तम्भ में क्रमशः विचलन लिख दिया जाता है जैसे 2, 4, 6, 8, 10 जब दूसरी विधि का प्रयोग किया जाता है तो विचलन वर्गान्तर की इकाइयों में देखा जाता हैं इसे "Step Deviations"या "Deviations in class interval units"कहते है।

(4) f को c से गुणा कर दिया जाता है गुणनफल fx होता है।

(5) $\sum fx$ की आवृतियों के योग (N) से भाग देने पर जो भजनफल प्राप्त होता है इस प्राप्त भजनफल को कल्पित मध्यमान में जोड़ दिया जाता है, दोनों का योग ही मध्यमान होता है।

अंकगणितीय मध्यमानों के दोष

(1) इसे बहुलक या मध्यांक की तरह बिन्दु रेखीय रीति से नही ज्ञात किया जा सकता।

(2) अंकगणितीय मध्यमान की गणना करते समय यदि श्रृंखला बड़ी नही है और कोई पद असामान्य रूप से बड़ा है तो मध्यमान पर उसका बहुत प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ– 6 व्यक्ति की आय कमशः 2000, 372,480, 320, 600, 200 रू. है। इस समूह का मध्यमान आय 633 रू. प्रति माह हुआ, लेकिन यह अंक इस समूह का प्रतिनिधित्व नही करता हैं।

(3) यदि हमें श्रृंखला के पदों का मूल्य नहीं ज्ञात है तो हम गणित मध्यमान का प्रयोग उस प्रदत्त पर नहीं कर सकते हैं।

(4) मध्यांक और बहुलांक की तुलना में इसकी गणना कठिन हैं।

(5) मध्यमान का अंक ऐसा भी हो सकता है जो श्रृंखला मे नहीं होता, जैसे– 12, 11, 15, 18 का मध्यमान =14

(6) कमी 2 मध्यमान से भद्दे (absurd) परिणाम प्राप्त होते है, उदाहरणार्थ– यदि हम 5 परिवार के बच्चों की संख्या लेकर मध्यमान ज्ञात करते है और मध्यमान 2.3 आता है तो इससे हम क्या निष्कर्ष प्राप्त करेगें? इस तरह के परिणाम भददे होते हैं।

(7)गणित मध्यमान श्रृंखला के बड़े पद को अधिक महत्व और छोटे पद को कम महत्व देते हैं।

मध्यांक

औसत का सबसे सरल रूप मध्यांक है। जिसको परिभाषित करते हुये कहा जा सकता है कि मध्यांक वह मूल्य है जो श्रृंखला के प्राप्तांको को दो बराबर भागों में इस प्रकार बांट देता है कि एक ओर के सभी प्राप्तांक उससे कम मूल्य के तथा दूसरी प्रदत्त अव्यस्थित होता है। व्यस्थित उस प्रदत्त के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि आवृत्ति वितरण मे मध्यांक वह बिन्दु है जो सम्पूर्ण वितरण को दो बराबर भागों में विभाजित करता है। मापदंड पर मध्यांक ऐसा बिन्दु होता है जिसके ऊपर तथा नीचे 50% प्राप्तांक होते है। मध्यांक एक बिन्दु है कोई प्राप्तांक नहीं। मध्यांक को परिभाषित करते हुये विद्वानों के निम्नलिखित मत है–

काक्सटन, काउडन और क्लीन (Croxtan] Cowden & Klein) के अनुसार– ''मध्याक वह मूल्य है जो श्रृंखला को इस प्रकार विभाजित करता है कि आधें या आधे से अधिक पदो के मूल्य मध्यांक के समान या कम और आधा या आधें मूल्य मध्यांक पद के समान या अधिक होते है।"

"The median is that value which divides a series so that one half or more of the items are equal to or less than it and one half or more of the items are equal to or greater than it."

गिलफोर्ड (Guilford) के अनुसार– ''मापन की माप श्रेणी पर मध्यांक वह बिन्दु है जिसके ऊपर और नीचे श्रृंखला के आधे–आधे पर होते है।''

"The median is defined as that pint on the scale of measurement above which are eÛactly half the cases and below which are the other half."

गैरेट (Garrett) के अनुसार– "जब आवृत्ति वितरण में प्राप्तांक सतत् श्रृंखला में व्यवस्थित किये जाते हैं तो मध्यांक वह बिन्दु होता है जहाँ से 50 प्रतिशत प्राप्तांक दोनों ओर किये जाते हैं।''

"When scores in a Continuous series are grouped in to a frequency distribution the median by definition is the 50% point in the distribution."

अव्यस्थित प्रदत्त से मध्यांक की गणना

अव्यस्थित प्रदत्त से मध्यांक की गणना के लिये अंको को अवरोही या आरोही क्रम में व्यस्थित करते हैं। यदि N संख्या सम (even) है तो N में 1 जोड़ दिया जाता है और योगफल को दो से विभाजित कर दिया जाता है। भजनफल जहाँ श्रृंखला में स्थित होता है वही मध्यांक होता है। इसका मूल्य सूत्र यह है–

Median = the (N+1/2) the measure in order of size

डदाहरण– निम्नलिखित अंकों का मध्यांक ज्ञात कीजिये।

14, 15, 17, 12, 10, 8, 9, 11, 13

8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, (आरोही कम में)

Mdn =(N+1/2) the number

=(9+1/2) = 5

=श्रृंखला में पाचंवा अंक = 12

इस प्रकार जब N की संख्या सम होती है तो हम इस प्रक्रिया का अनुसरणकरेंगे।

उदाहरण– 14, 15, 12, 10, 8, 9, 11, 13 का मध्यांक ज्ञात करना है।

8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15 (क्रम में)

Mdn = (N+1/2) the number

= (8+1/2) = 4.5

= 4th position +51w position/2)

= (11 + 12/2)

= 11.5 मध्यांक

व्यस्थित प्रदत्त से मध्यांक की गणना

तालिका 4:6 व्यवस्थित प्रदत्त गणना

c.i.	Frequency (f)	Cumulative Frequency (cf)
90-94	2	54+2=56
85-89	2	52+2=54
80-84	4	48+4=52
75-79	8	40+8=48
70-74	6	34+6=40
65-69	11	23+11=34
60-64	9	14+9=23

55-59	7	7+7=14
50-54	5	2+5=7
45-49	0	2+0=2
40-49	2	2
	N=56	

उपर्युक्त प्रदत्त पर निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता है–

Mdn = L + (N/2 - F) x i ..... (10)

Mdn = U + (N/2 - Fa) x i ..... (11)

Mdn = 64.5 + (28 - 22) x 5

= 64.5+2.27

= 66.77मध्यांक

= 69.5 - (28-22/11) x 5

= 69.5 - 2.73मध्यांक

यहाँ,

L = उस वर्गान्तर की निम्न सीमा जिसमें नव्यांक स्थित है।

F = L के नीचे आवृतियों का योग।

Fm = उस वर्गान्तर की आवृति जिसमें मध्यांक स्थित है।

Fa = U के ऊपर आवृतियों का योग।

N = आवृतियों का योग।

i = वर्ग विस्तार।

बोधगम्य प्रश्न :–

1. निम्नलिखित अंको का मध्यमान और मध्यांक ज्ञात कीजिये–

22, 24, 20, 23, 21, 19, 23, 22, 20, 22, 20, 23, 25, 21, 21, 22, 24, 23, 22, 21, 22, 21, 23.

उत्तर मध्यमान 21.96, मध्यांक 22.

2. निम्नलिखित वितरण का मध्यमान, मध्यांक और बहुलांक ज्ञात कीजिये।

प्राप्तांक	24	23	22	21	20	19	18	17	16	15	14	13
आवृत्तियाँ	1	0	2	6	10	12	8	5	3	4	1	2

उत्तर– मध्यमान 18.5, मध्यांक 18.8, बहुलांक 19.055

प्रदत्तों का चित्रपरक प्रस्तुतिकरण

(Graphic Representation of date)

प्रदत्तों को बोधगम्य बनाने के लिये प्रदत्त वर्गीकरण प्रदत्तों के चित्र परक प्रस्तुतीकरण का लाभ यह है कि यह बहुत स्पष्ट, शुद्ध और संक्षिप्त होते हैं। चित्र का प्रयोग हम उन्हीं स्थितियों में करते हैं जब प्रदत्त बहुत जटिल और विशाल होते है तथा सामान्य वगै के लिये उन्हें समझना कठिन होता है। इस प्रकार रेखाचित्र प्रदत्तों को समझने और उनके विश्लेषण में सहायक होते हैं।

गेरेट (Garrett) का कहना है– ''परिवर्त्य वह गुण या विशेषण है जो अन्तर प्रदर्शित करते हैं और एक दूसरे से कुछ विमाओं पर भिन्न होते हैं।''

"Variables are attributes or qualities which expresses differences in magnitude and which vary along some dimension." -Garrett.

ब्लेयर (Blair) के अनुसार– ''समझने में बहुत साधारण, बहुत से परिवत्यों की रचना में सरल और सबसे अधिक प्रयोग में लाया जाने वाला चार्ट रेखाचित्र है।''

"The simplest to understand, the easiest to make the most variable and the most widely used type of chart is the live graph. -Blair"

बाडिंगटन (Boddington) के अनुसार– ''रेखा का विरण मष्तिष्क पर प्रभाव डालने में सारणित कथन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है, यह उतनी ही शीघ्रता से जितनी आँख काम करने की क्षमता रखती है, यह प्रकट करता है कि क्या हो रहा है और क्या होने वाला है।''

"The wandering of a line is more powerful in its effect on the mind than a tabulated statement, it shows what is happening, and what is likely to take place, just as quickly as the iye is capable of working."-Boddington

रेखाचित्रीय प्रदर्शन की उपयोगिता :–

(1) इससे तुलनात्मक अध्ययन में सरलता होती है।

(2) रेखाचित्रीय प्रदर्शन से प्रदत्त प्रभावशाली एवं आकर्षक हो जाते हैं तथा उन्हें समझने में सरलता होती है।

(3) प्रदत्तों से संख्या संबंधी सूचनायें भूल जाती हैं, लेकिन इनका स्थाई प्रभाव पड़ता है।

(4) रेखाचित्रीय प्रदर्शन द्वारा सरलता पूर्वक कथन कर सकते हैं। जब हम किसी प्रतिदर्श से प्राप्त प्रदत्तों का रेखाचित्रीय प्रदर्शन करते हैं तो इसके आधार पर हम पूरी जनसंख्या के बारे में अनुमान लगा सकते हैं।

(5) रेखाचित्रों के द्वारा प्रदत्तों के दो समूहों में सह–सम्बन्ध का अनुमान लगाया जा सकता है।

(6) जटिल प्रदत्तों को नवीन रूप दिया जा सकता है।

(7) एक ही दृष्टि में प्रदत्तों का विश्लेषण संभव है।

(8) विशाल प्रदत्त को कम स्थान में ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

रेखाचित्रीय प्रदर्शन के दोष :–

(1) रेखाचित्रों में प्रयुक्त वक्रों के द्वारा हमें केवल गति का ही आभास होता हैं वास्तविक मूल्य का अनुमान नहीं होता।

(2) रेखाचित्रों में उस समय आत्म–निष्ठा आ जाती है जब मानदंडों में इच्छानुसार थोड़ा भी परिवर्तन कर दिया जाता है। इस परिवर्तन से लोब प्रायः या तो वक्रों को सुन्दर बनाने का प्रयास करते हैं या अपने प्रदत्तों की उस कमी को छिपातें हैं जो उनके उद्देश्य की पूर्ति में अभाव को प्रदर्शित करता है। यदि वक्रों को सुन्दर बनाने पर जोर ने दिया जाये और अभाव को ने छिपाया जाय तो रेखाचित्र अधिक शुद्ध बनता है।

रेखाचित्रों के प्रकार

1. आवृत्ति बहुभुज (frequency Polygon) :–

बिन्दुओं को मूल्यों या मध्य–बिन्दुओं और उनकी आवृत्तियों के आधार पर बनाया गया अनेक भुजाओं वाला ज्यामितीय चित्र, आवृत्ति बहुभुज कहलाता है। विच्छिन्न या खण्डित श्रेणी में मूल्यों का भुजाक्ष (X-axis) पर तथा आवृत्तियों को कोटि अक्ष (Y-axis) पर रखकर बिन्दु प्रांकित कर दिए जाते हैं। फिर उन आपस मे मिलाकर तथा पहले और अन्तिम बिन्दुओं को आधार रेखा से मिलाकर आवृत्ति बहुभुज बना लिया जाता हैं।

विच्छिन्न श्रेणी में आवृत्ति बहुभुज का प्रयोग बहुलक्ष निर्धारण के लिए किया जाता हैं। बहुभुज के शिखर–बिन्दु (apex) से भुजाक्ष पर लम्ब खींचा जाता हैं तथा जिस बिन्दु पर वह लम्ब भुजाक्ष को स्पर्श करता है वही बहुलक मूल्य माना जाता है।

अविच्छिन्न श्रेणी में आवृत्ति–बहुभुज की रचना करने के लिए मध्य–बिन्दुओं को भुजाक्ष पर तथा आवृत्तियों को कोटि–अक्ष पर रखकर बिन्दु प्रांकित कर लिए जातें है फिर उन बिन्दुओं को आपस में मिलाया जाता है। प्रथम और अन्तिम बिन्दुओं को भुजाक्ष से मिला दिया जाता है। इस प्रकार की श्रेणी में पहले आवृत्ति –चित्र बनाकर फिर आवृत्ति बहुभुज बनाना अधिक सरल होता हैं। ऐसा करने के लिए विभिन्न आयतों के शिखर पर मध्य–बिन्दु लेकर उन्हें आपस में मिला लिया जाता है तथा प्रथम और अन्तिम बिन्दुओं को

भुजाक्ष से इस प्रकार मिलाया जाता है कि आवृत्ति चित्र और आवृति–बहुभुज के क्षेत्रफल बराबर रहें। उपरोक्त चित्र देखने से आवृत्ति बहुभुज की रचना विधि स्पष्ट हो जायेगी।

समावेशी श्रृंखला वर्गान्तर	शुद्ध वर्गीकृत श्रृंखला वर्गान्तर	आकृतियाँ	मध्य बिन्दु
50-54	49.5-54.5	0	52
45-49	44.5-49.5	4	47
40-44	39.5-44.5	6	42
35-39	34.5-39.5	8	37
30-34	29.5-34.5	10	32
25-29	24.5-29.5	14	27
20-24	19.5-24.5	10	22
15-19	14.5-19.5	9	17
1014	9.5-14.5	4	12
5-9	4.5-9.5	0	7

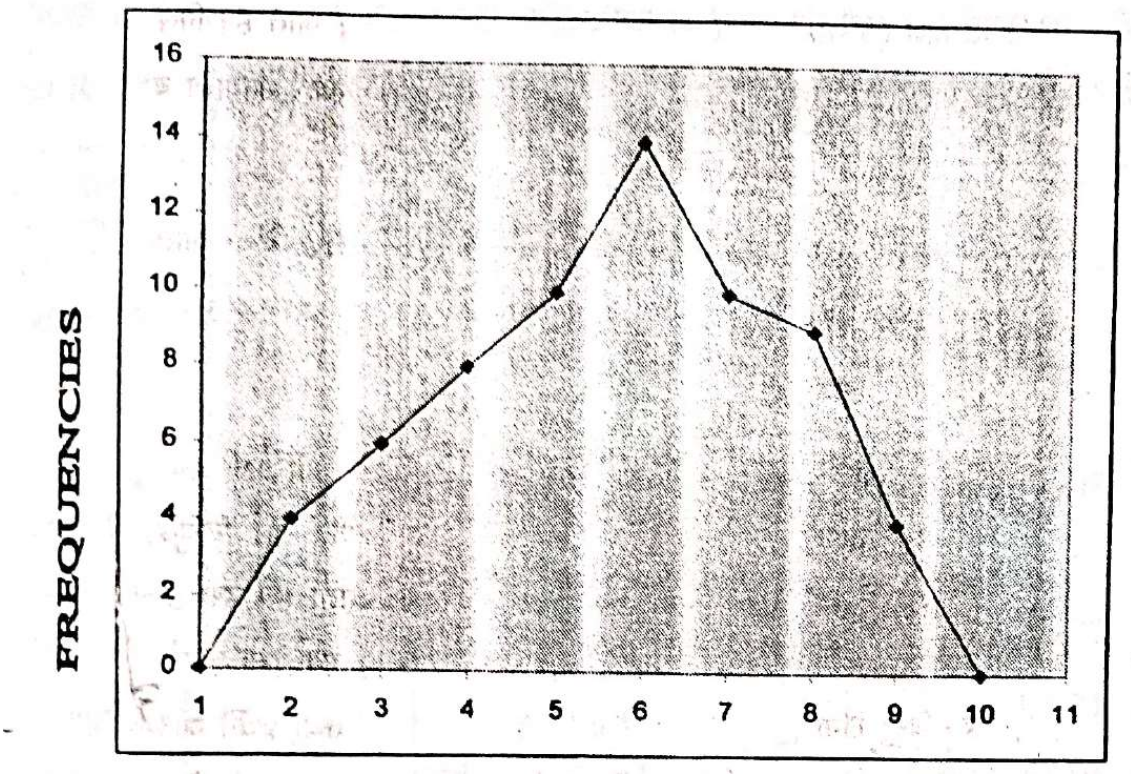

FREQUENCY POLYGON BASED ON CLASS INTERVAL

2. स्तम्माकृति (Histogram) :–

स्तम्भाकृति के द्वारा भी आवृत्ति वितरण को प्रदर्शित किया जाता है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इसमें आवृत्तियों के प्रस्तुतीकरण के लिये स्तम्भों का प्रयोग किया जाता है। अलग–अलग स्तम्भ वर्गान्तरों की आवृत्तियों को प्रदर्शित करतें है। यह विधि अत्यन्त सरल है। फरग्यूसन (Ferguson) महोदय ने स्तम्भाकृति की परिभाषा बताते हुये कहा है–''स्तम्भाकृति वह रेखाचित्र है जिसमें आवृत्तियों का प्रस्तुतीकरण क्षेत्रों के द्वारा स्तम्भों के रूप में किया जाता है''

"A histogram is a grupecies in which freqency are represented by areas in the form of bars."

स्तम्भाकृति की रचना के लिये ग्राफ कागज पर क्षैतिज और उदग्र रेखा के लिये कोई पैमाना निर्धारित कर लेते है। यह पैमाना कागज के क्षेत्र के अनुसार ही मानना चाहिये। इसके पश्चात समावेशी श्रेणी को अपवर्जी या शुद्ध श्रेणी में परिवर्तित कर लेना चाहिये, और X-axis पर वर्गान्तरों को निम्नतम सीमाओं को अंकित कर लेना चाहिये, रेखाचित्र बनाने के लिये Y-axisपर वर्गान्तरानुसार जय आवृत्तियाँ को अंकित करना होगा तो यह किसी भी दिशा से शुरू किया जा सकता है। चाहे बायें से दायें या दायें से बायें Y-axisपर आवृत्ति को अंकित कर देगें। स्तम्भाकृति की रचना के लिये X-axisको ही आधार बनाया जाता है।

c.i.	x	f
45-49	47	4
40-44	42	8
35-39	37	12
30-34	32	16
25-29	27	12
20-24	22	10
15-19	17	8
10-14	12	4

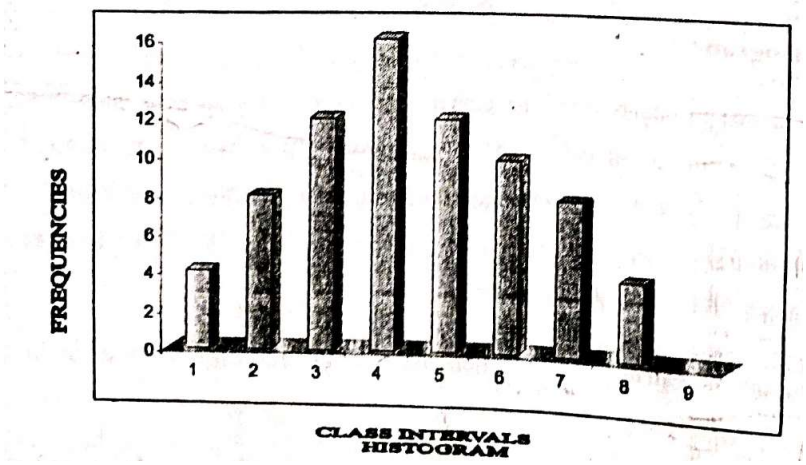

3. स्तम्भ चित्र (Bar Graph) :–

स्तम्भ चित्रों में भिन्न–भिन्न परिवत्यो के प्राप्तांकों को अलग–अलग प्रदर्शित किया जाता हैं जब कि सतम्भाकृतियों में यह संभव नहीं है। स्तम्भाकृतियों में प्रदर्शित आवृत्तियों से बना वक्र विसर्जित करता है। जब कि स्तम्भाकृति में इस तरह का कोई वक नहीं होता है अगर हमें कई परिवत्यों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये रेखाचित्र बनाना है, तो स्तम्भ चित्र ही उपयुक्त होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्तम्भ चित्रों का प्रयोग मनोविज्ञान कुछ विशेषकों की सम्बन्धित मात्रा का तुलनात्मक अध्ययन के लिये किया जाता है जब कि शिक्षा में इसका प्रयोग विभिन्न परिवयों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये किया जाता है।

स्तम्भ चित्र बनाने के लिये x-axisपर प्रत्येक स्तम्भों की चौड़ाई और उन स्तम्भों के बीच की समान दूरी के लिये बिन्दु बना लेते हैं और ग्राफ कागज के आकार के अनुसार पैमाना मान लेते हैं। दंड आरेखों को निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है।

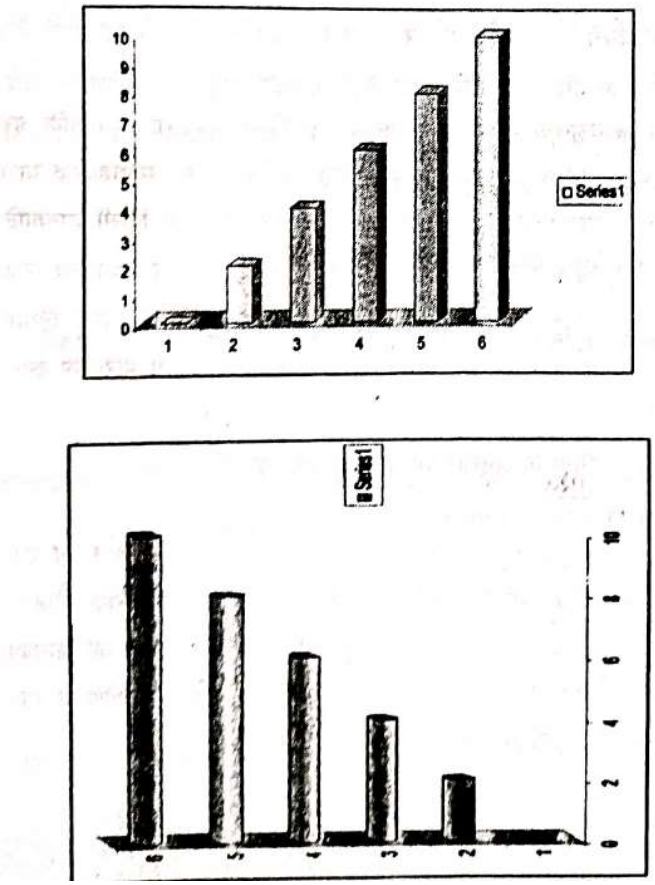

4. संचयी आवृत्ति रेखाचित्र (Cumulative frequency curve) :–

संचयी आवृत्ति रेखाचित्र बनाने के लिये सबसे पहले हम संचयी आवृत्तियों को मालूम कर लेते हैं। X-axis प्राप्तांक तथा Y-axis पर संचयी आवृत्तियों को अंकित कर लेते हैं। X-axis पर हम चाहें वर्गान्तरों मध्यबिन्दुओं को अंकित कर लें या उच्चतम सीमाओं को। इस रेखाचित्र की ऊँचाई चौड़ाई लगभग 75 प्रतिशत होती है। वर्गान्तरों में से सबसे नीचे वाले वर्गान्तर की निम्नतम सीमा ही रेखाचित्र का प्रथम बिन्दु होता है। इसकी रचना के लिये निम्नलिखित चारणों का अनुसरण करना होगा–

(1) वर्गान्तरो की उच्चतम सीमा या मध्य बिन्दु ज्ञात करना।

(2) संचयी आवृतियाँ ज्ञात करना।

संचयी आवृति ज्ञात करने के लिये हमें एक सरल प्रक्रिया का अनुसरण करना होता हैं हम जिस भी वर्गान्तर आवृत्ति की संचयी आवृत्ति ज्ञात करना चाहते हैं उसकी आवृत्ति को उसके नीचे की समस्त आवृति में जोड़ देते है। प्राप्त योगफल ही उस वर्गान्तर की

संचयी आवृत्ति होती है। इसी प्रक्रिया के अनुसार ही समस्त वर्गान्तरों की संचयी आवृत्तियाँ ज्ञात करते हैं।

(3) ग्राफ कागज पर ox और oy खींचना।

(4) oxऔर oy पर क्रमशः वर्गान्तर की उच्चतम सीमाओं या कध्यं विन्दुओं तथा संचयी आवृत्तियों को अंकित करना ।

(5) प्रत्येक वर्गान्तर की उच्चतम सीमा के अनुसार संचयी आवृत्तियों को अंकित करना।

(6) सभी बिन्दुओं को कम से मिला दिया जायेगा।

(7) इसका आकार 's' की तरह होता है इसलिये 's' shaped curveया 's' shaped graphकहते हैं।

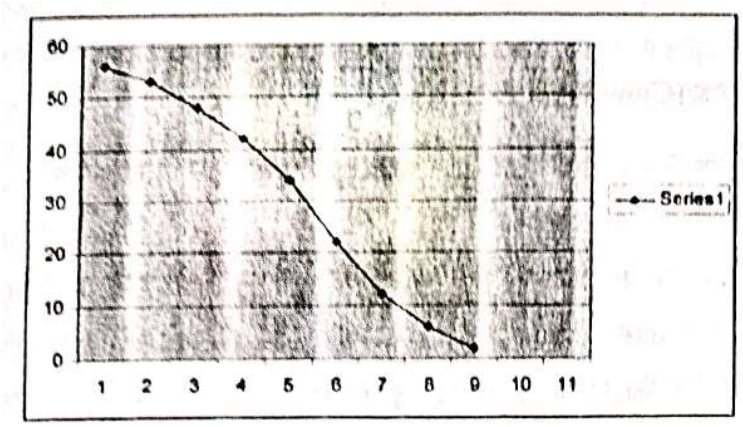

5. संचयी प्रतिशत वक्र (Cumulative Percentage Curve) :-

तोरण का सांख्यकी में बहुत महत्व है। क्योंकि इसके द्वारा सांख्यकीय गणना बहुत सरल हो जाती है इससे शतांशमान (Percentile Norms) तथा शतांश बिन्दु (Percentile Rank) ज्ञात किया जाता है। शतांश मानक को निर्धारित करने के लिये समान्यतया तोरण का ही प्रयोग किया जाता हैं तोरण की रचना संचयी आवृत्ति रेखाचित्रों की तरह की जाती है। उसी तरह संचयी प्रतिशत आवृत्तियों तैयार करना होता है इसके लिये सारिणी में एक खाना निर्धारित करना होता है। इस विधि में सेचयी प्रतिशत आवृत्तियों को मालूम करने से पहले संचयी आवृत्तियों तैयार की जाती है। संचयी आवृत्तियों के आधार पर ही संचयी आवृत्तियों तैयार की जाती हैं। उदाहरण के लिये यदि N =50 है और उसकी कुछ संचयी आवृतियाँ क्रमशः 3 8, 15, 25 है। इन संचयी आवृत्तियों से निम्नलिखित विधि से संचयी प्रतिशत आवृतियाँ तैयार की जायेगी।

50 आवृत्ति में संचयी आवृत्तियाँ हैं = 3

1 आवृत्ति में संचयी आवृत्तियाँकितनी होगी = 3 / 50

100 आवृत्ति में संचयी आवृत्तियाँकितनी होगी = 100 x 3 / 50 = 6 प्रतिशत

इसी प्रकार–

50 आवृत्तियों में संचयी आवृत्तियाँ हैं = 8

1 आवृत्ति में संचयी आवृत्तियाँ कितनी होगी = 8/50

100 आवृत्ति में संचयी आवृत्तियाँ कितनी होगी = 100 x8/50= 16 प्रतिशत

इसी प्रकार सभी संचयी आवृत्तियों की संचयी प्रतिशत आवृत्तियों ज्ञात की जायेगी और उन्हें संचयी उन्हें संघयी आवृत्ति रेखाचित्र की वरह अंकित किया जायेगा। अन्तर केवल इतना है कि संचयी आवृत्ति। चित्त केवल संचयी आवृत्तियों पर ही अंकित किये जातें हैं जब कि संचयी प्रतिशत आवृत्ति चित्र के लिये संचयी आवृतितयों का प्रतिशत ज्ञात करना होता है।

c.i.	f	Upper Limit	cf	cfp
60-64	4	64.5	50	100%
55-59	5	59.5	43	96%
50-54	3	54.5	41	82%
45-49	6	46.5	38	76%
40-44	8	44.5	32	64%
35-39	10	39.5	24	%48
30-34	4	35.5	14	28%
25-29	5	29.5	10	20%
20-24	3	24.5	5	10%
15-19	2	19.5	2	4%
10-14	0	14.5	0	0%

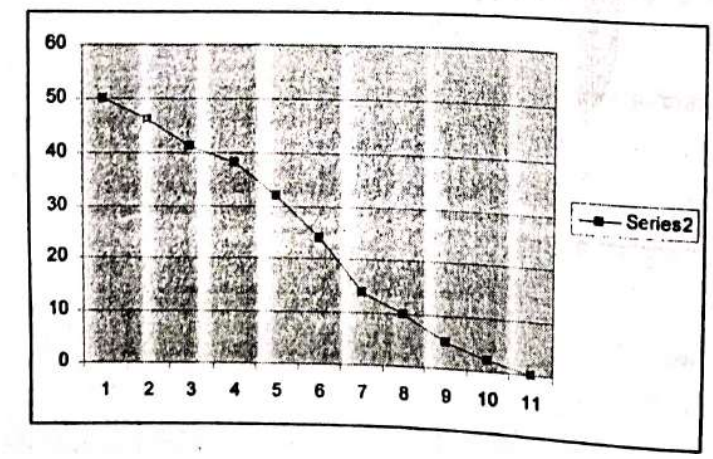

6. वृत्त ग्राफ (Circle graph or Pie diagram) :–

वतुर्ल चित्र का प्रयोग उन्हीं परिस्थितियों में किया जाता है जब सम्पूर्ण प्रदत्त के विभिन्न भागों का प्रसुतीकरण प्रभावशाली ढंग से एवं स्पष्टता से करना हो । प्रदत्तों का अनुपात एक ही दृष्टि में इसके अदलोकन से ज्ञात कर सकते हैं। इसमें सम्पूर्ण वृत्त सम्पूर्ण सम्पूर्ण प्रदत्त का प्रतिनिधित्व करता है इसका तात्पर्य यह है कि वृत्ता का सम्पूर्ण क्षेत्र

सम्पूर्ण ऑकड़ों को प्रदर्शित करता है। सम्पूर्ण वृत्त 36 प्रतिशत का होता है। इसके वृत में जनसंख्या के विशेषकों का क्षेत्र इस प्रकार ज्ञात करेंगें

100 प्रतिशत जन–संख्या प्रदर्शित करता है 360

10 प्रतिशत को कितने अंक प्रदर्शित करेंगें= 360 x 10 / 100 = 36′

40 प्रतिशत को कितने अंक प्रदर्शित करेंगें= 360 x 40 / 100 = 144′

50 प्रतिशत को कितने अंक प्रदर्शित करेंगें= 360 x 50 / 100 = 180′

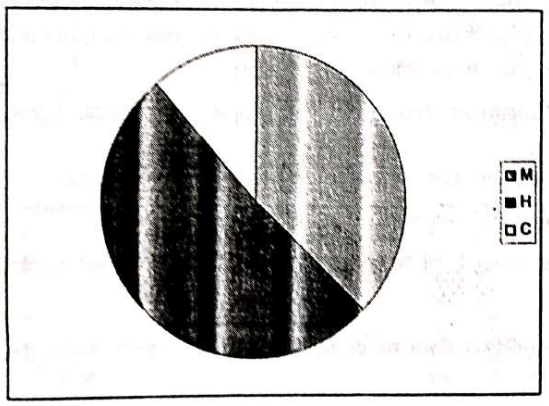

बोधगमय प्रश्न :–

1. रेखाचित्र कितने प्रकार के होते हैं? उदाहरणों सहित वर्णन कीजिये।

25, 28, 35, 45, 47, 42, 57, 15, 18, 20, 22, 28, 59, 70, 74, 35, 40, 55, 56, 60 उर्पयुक्त प्राप्तांकों का आवृत्ति बहुभुज तैयार कीजिये।

2. काल्पनिक प्रदत्त के आधार पर आवृत्ति बहुभुज तथा स्तम्भाकार की रचना करें तथा इन दोनों प्रकारके रेखाचित्रों के विभाग के नियमों का उल्लेख करें।

3. रेखाचित्रों के गुणों और दोषों का वर्णन कीजिये।

.....

कुछ उपयोगी पुस्तकें :–

लाल दास डी.के. (2000). प्रैक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च : ए सोशल वर्क पर्सपैक्टिव, रावत, जयपुर।

रामाचन्द्रन पी (1987). रिसर्च इन सोशल वर्क, ए.बी.बोस (इडी.) एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल वर्क इन इंडिया, भारत सरकार, नई दिल्ली।

येगिडिस, बी एल एंड बेनबैक, व्हाइल प्रीपेयरिंग द रिसर्च प्लान.

नैकमियास डी एंड नैकमियास सी. (1981) रिसर्च मैथड्स इन द सोशल साइंसेज न्यूयार्क, सेंट मार्टिन्स प्रैस।

गॉलटंग, जॉन (1970), थ्योरी एंड मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च, जॉर्ज एलन एंड अनवीन।

कोठारी एल.आर. (1985), रिसर्च मैथेडोलोजी, नई दिल्ली, विश्व प्रकाशन।

सैलीरज जी.ईटी. एएल. (1973), रिसर्च मैथड्स इन सोशल रिलेशन्स, हॉल्ट राइनहार्ट एंड वीन्सटन (3 संस्करण). न्यूयार्क।

यंग, पी.वी. (1953), साइनटिफिक सोशल सर्वे एंड रिसर्च, एंगलवुड क्लीफ एन.जे. पेनटीस हॉल, (4 संस्करण)।

बेकर,एल थेरेस (1988), डुइंग सोशल रिसर्च, मैकग्राहिल, न्यूयार्क।

ब्लैक, जेम्स ए. एंड चौंम्पियन, डीन जे. (1976), मैथड्स एण्ड ईसूजइन सोशल रिसर्च, जोन विले, न्यूयार्क।

बर्गेस (1949). षरिसर्च मैथड्सइन दन सोसियोलोजीष इन ज्योर्जेसगुर्विच एण्ड डब्लयू ई मूर (संस्करण), ट्वंटियथ सेच्चूरी सोसियोलोजी।

रूबेल, ऐलिन एण्ड बेब ई. (1984), रिसर्च मैथोडालॉजी फॉर सोशलवर्क, बेलमोंट, वर्ड्सवर्स, कैलिफोर्निया।

सटाफर, एस.ए. (1962). सोशल रिसघ्र टू टैस्ट आडियाज, फ्री प्रेस आफ ग्लेंकोई, न्यूयार्क।

बिलिकंसन टीएस एण्ड भंडारकर, पी. एल. (1977), मैथोडालोजी एण्ड टकनीक्स ऑफ सोशेल रिसर्च, हिमालयन, बंबई।

लाल दास, डी.के. (2000). प्रवक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च रू ए सोसयल वर्क पर्सपेक्टिव, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।

कलिंगर फेड आर (1964), फाउडेशन ऑफ बिहैवियरल रिसर्च, सुरजीत पब्लिकेशंस, दिल्ली।

बैली, केल्सथ डी (1978), मेथड्स ऑफ सोशल रिसर्च, द फ्री प्रैस, लंदन।

एलहेंस डी.एन.(1984). फॅडामेंटल ऑफ स्टेटीस्टिक्स, किताब महल, इलाहाबाद।

फेड जे.ई. (1977), मार्डन एलीमेंट्री स्टेटीस्टिक्स, प्रेंटिस हॉल, नई दिल्ली।

गुप्ता एस.पी. (1980), स्टैटिक्ल मेथइस, एस. चांद, नई दिल्ली।

किसफ, कुर्टिस एच. (1987). फंडामेंटल स्टेटीस्टिक्स फॉर ह्युमन सर्विसेस एण्ड सोशल वर्क, डक्सब्री प्रेस, बोस्टन।

फिलिप ए.ई.ईटी अल (1975), सोशल वर्क रिसर्च एण्ड द एनालिसिस ऑफ सोशल डाटा पेरागान प्रेस,ऑक्फोर्ड।

सेंडस डी. एच. (1975), स्टेटीस्टिक्स ऐ फ्रेश अप्रोच, मैकग्राहिल हिल, नई दिल्ली।

.....

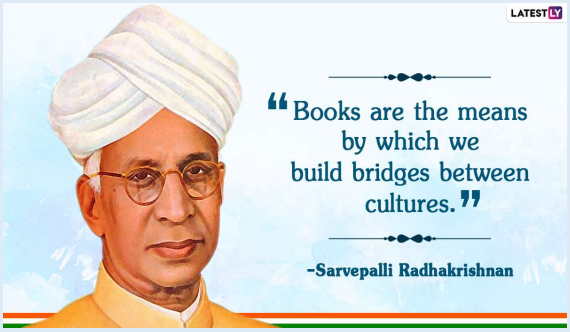

Center for Distance Learning & Continuing Education
MAHATMA GANDHI CHITRAKOOT GRAMODAYA VISHWAVIDYALAYA
Chitrakoot, Satna (M.P.) 485334
E-mail : directordistancemgcgv@gmail.com